सितंबर–2022

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष–86 । अंक–9 । ₹–19 प्रति । ₹–220 वार्षिक

8 गुरुकृपा से होते हैं भगवद्दर्शन

15 जीवन का सौंदर्य है वाणी

26 परम आनंद का द्वार है ध्यान

55 सद्गुणों का अभ्यास एवं चरित्र निर्माण

अखण्ड ज्योति 75 वर्ष पूर्व

सितंबर–1947

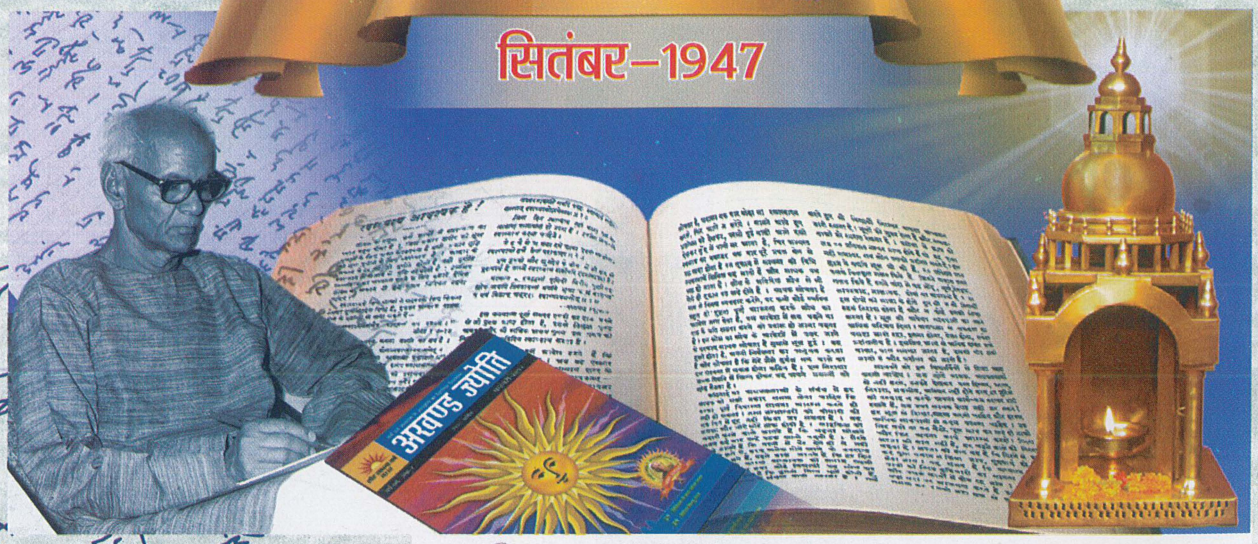

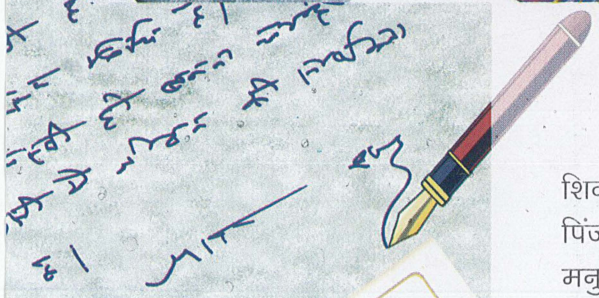

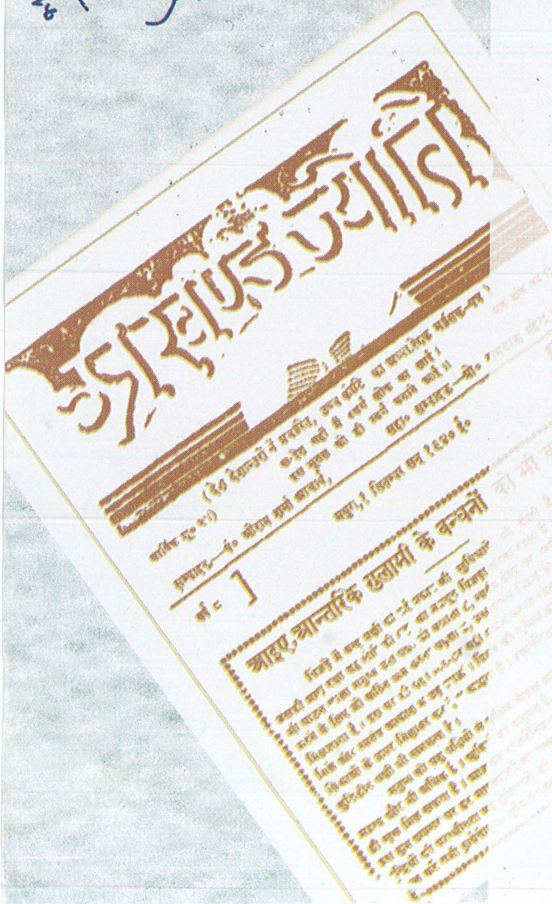

आइए, आंतरिक गुलामी के बंधनों को भी काट डालें

"पिंजड़े में बंद पक्षी को कई प्रकार की सुविधाएँ भी होती हैं। शिकारी जानवरों से उसकी प्राण-रक्षा वह लोहे की छड़ों का मजबूत पिंजड़ा करता रहता है। वर्षा, धूप, भूख, प्यास से भी पालने वाला मनुष्य उस पक्षी को बचाता है, स्वतंत्र होने पर पक्षी को अपने रहने और पेट भरने के लिए जो कठिन श्रम करना पड़ता है, उस सबसे पिंजड़े में बंद रहने वाले को छुटकारा मिल जाता है। इस पर भी पक्षी निरंतर यही प्रयत्न करता रहता है कि मुझे इस बंधन से मुक्ति मिले और स्वतंत्र आकाश में उड़ जाऊँ। पिंजड़े की सुविधाओं को वह स्वच्छंद जीवन की असुविधाओं के ऊपर निछावर कर देना चाहता है। स्वाधीनता सचमुच ऐसी ही वस्तु है, उसका मूल्य बुद्धिहीन पक्षी भी समझता है।

मनुष्य को पशु-पक्षियों से अधिक चेतना प्राप्त है। इसलिए उसके लिए स्वाधीनता का महत्त्व और भी अधिक है। ऋषियों का अनुभव है–'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।' स्वाधीन को ही सुख मिल सकता है। आज हम राजनीतिक पराधीनता से बहुत हद तक मुक्ति प्राप्त कर रहे हैं। इस शुभ अवसर पर हर भारतवासी का प्रसन्न होना स्वाभाविक है। पर अभी बौद्धिक पराधीनता, इंद्रियों की पराधीनता एवं कुविचारों की पराधीनता शेष हैं। आइए, इन बंधनों को भी तोड़ने का प्रयत्न करें, तभी सर्वतोमुखी मुक्ति का आनंद मिल सकेगा।"

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	:	86
अंक	:	09
सितंबर	:	2022
भाद्रपद-आश्विन	:	2079
प्रकाशन तिथि	:	01.08.2022
वार्षिक चंदा		
भारत में	:	220/-
विदेश में	:	1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	5000/-

दृष्टिकोण

मनुष्य का दृष्टिकोण सही हो तभी तथ्य अपने वास्तविक स्वरूप में सामने आ पाते हैं। तभी सही दिशा पर चल पाना और सही प्रक्रिया को अपना पाना संभव हो पाता है। दृष्टिकोण के अभाव में व्यक्ति इधर-उधर भटकता, भ्रांति-विकृति का शिकार होता और प्रगति के स्थान पर अवनति को अपनाता दिखाई पड़ता है।

दृष्टिकोण उन्नत हो, उच्चस्तरीय एवं उत्कृष्ट हो तो व्यक्ति इस सत्य को अनुभव कर पाता है कि लाखों योनियों में भटकने के बाद, तब कहीं जाकर इस मनुष्य जीवन को प्राप्त करने का सुयोग बन पड़ा है और इसे आत्मपरिष्कार और लोक-कल्याण में लगाते हुए सार्थक करना चाहिए। यदि यह स्मरण रखा जा सका तो मनुष्य को देवमानव, सिद्धपुरुष एवं अवतार बनने से कोई रोक नहीं सकता, अन्यथा दूसरे भटके हुए मनुष्यों की तरह से हमारा जीवन भी भवबंधनों में भटककर त्रास पाने और पतन में गिरने में ही चला जाएगा।

जीना सैंकड़ों वर्षों तक है, इसलिए इसे भोग-विलास में गुजार दें—ऐसी सोच वाले स्वयं के पतन का और दूसरों के पराभव का कारण बनते हैं। सही दृष्टिकोण तो यही है कि हम अपने भीतर समाहित क्षमताओं के पुंज का जागरण करें। ये शक्तियाँ हमारे ही भीतर हैं—आवश्यकता मात्र उनके जागरण की है। दृष्टिकोण का परिवर्तन करते ही आत्मबल जाग उठता है और व्यक्ति श्रेष्ठता की राह पर चल निकलता है। दृष्टिकोण का यह परिवर्तन ही सार्थक परिणामों की पंक्तियाँ खड़ी करता दिखाई पड़ता है। ❐

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

आवरण-1	1
आवरण-2	2
दृष्टिकोण	3
विशिष्ट सामयिक चिंतन प्रतिकार का प्रतीक बन जाएँ हम	5
अप्प दीपो भव	7
गुरुकृपा से होते हैं भगवद्दर्शन	8
पर्व विशेष (दीक्षा दिवस) गायत्री-साधना संग जीवन का सर्वतोन्मुखी उन्नयन	11
आदिशक्ति की साधना का पर्व	14
जीवन का सौंदर्य है वाणी	15
ईश्वरतत्त्व का जागरण	17
जिसकी जैसी श्रद्धा, वैसा उसका जीवन	19
देवतरु का हो संरक्षण-संवर्द्धन	22
शिक्षक दिवस पर भारतीय दर्शन के पुरोधा डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन	24
परम आनंद का द्वार है ध्यान	26
जड़ों से जुड़कर मिलेंगे समाधान	30
समस्त सुखों का आधार है धर्म	31
मन:स्थिति की साध एवं समय का श्रेष्ठतम सदुपयोग	34
कैसे करें आत्मविकास	36
आत्मज्ञान ही बंधन से मुक्ति का मार्ग है	38
चेतना की शिखर यात्रा—240 यथार्थ की कसौटी पर विश्वास	41
बदलती जलवायु के प्रभाव	44
ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—161 थायरॉयड की समस्या का यौगिक निदान	46
वृक्षारोपण एवं वनों का संरक्षण-संवर्द्धन	49
शास्त्रीय संगीत का स्वास्थ्य पर प्रभाव	51
युगगीता—268 जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वैसा ही बनता है उसका व्यक्तित्व	53
सद्गुणों का अभ्यास एवं चरित्र निर्माण	55
आस्था और विश्वास का संकट	57
परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी देवत्व के जागरण का आधार यज्ञ	59
विश्वविद्यालय परिसर से—207 सकारात्मक संचार का संवाहक बन रहा देव संस्कृति विश्वविद्यालय	62
अपनों से अपनी बात सनातन धर्म की गौरव-गरिमा की पुनर्प्रतिष्ठा करेंगी नारियाँ	64
जग कल्याणी मातु भगवती (कविता)	66
आवरण-3	67
आवरण-4	68

आवरण पृष्ठ परिचय

अंतर्जगत् में विराजमान सूक्ष्मचक्र

सितंबर-अक्टूबर, 2022 के पर्व-त्योहार

गुरुवार	01 सितंबर	ऋषि पंचमी	रविवार	02 अक्टूबर	महात्मा गांधी/ शास्त्री जयंती
शुक्रवार	02 सितंबर	सूर्य षष्ठी	बुधवार	05 अक्टूबर	विजयादशमी
मंगलवार	06 सितंबर	जलझूलनी एकादशी 'स्मा०'	गुरुवार	06 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी
शुक्रवार	09 सितंबर	अनंत चतुर्दशी	रविवार	09 अक्टूबर	शरद पूर्णिमा/ वाल्मीकि जयंती
शनिवार	10 सितंबर	महाप्रयाण दिवस/ महालयारंभ	गुरुवार	13 अक्टूबर	करवा चौथ
शनिवार	17 सितंबर	विश्वकर्मा जयंती	सोमवार	17 अक्टूबर	अहोई अष्टमी
सोमवार	19 सितंबर	मातृ नवमी	शुक्रवार	21 अक्टूबर	रमा एकादशी
बुधवार	21 सितंबर	इंदिरा एकादशी	शनिवार	22 अक्टूबर	धनतेरस
रविवार	25 सितंबर	सर्वपितृ अमावस्या	सोमवार	24 अक्टूबर	रूपचतुर्दशी/ दीपावली
सोमवार	26 सितंबर	नवरात्रारंभ	बुधवार	26 अक्टूबर	बेसतुबरस/ अन्नकूट
शनिवार	01 अक्टूबर	सूर्य षष्ठी	गुरुवार	27 अक्टूबर	भाईदूज

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

प्रतिकार का प्रतीक बन जाएँ हम

वर्तमान समय की परिस्थितियों की भीषणता, भयावहता से हर व्यक्ति परिचित है। आज जिस तरह की परिस्थितियाँ मानवता के सम्मुख आकर प्रस्तुत हो गई हैं, वे एक तरह से महासमर की, आर या पार की, इधर या उधर की परिस्थितियाँ हैं। ये ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जहाँ दो में एक विकल्प का चयन अनिवार्य हो गया है। शुभ या अशुभ में से एक का, विनाश या सृजन में से एक का, देवत्व या असुरता में से एक का चयन जरूरी हो गया है। ऐसा इसलिए है; क्योंकि बाहरी चमक को पाने की अंधी दौड़ में आज मानव आंतरिक संतोष, आत्मिक प्रगति, आध्यात्मिक विकास को पूरी तरह से भूलकर बैठ गया है।

बाहरी चमक को पाने की इस नासमझ दौड़ में दिलों की दरिद्रता और भावनाओं का जो भिखारीपन हमारे हिस्से में आया है—भला उससे कौन अपरिचित है? यह ठीक है कि सुख के साधन बढ़े हैं और हमारे आगे सुविधाओं के अंबार भी लगे हैं, पर क्या यह ठीक नहीं है कि उसी अनुपात में परस्पर के स्नेह, विश्वास में कमी भी आई है। एकदूसरे के प्रति विश्वास का स्थान शक, संदेह और कठोरता ने ले लिया है। दुनिया की दूरियाँ घटी हैं, पर उसी अनुपात में लोगों के दिलों के फासले बढ़े भी हैं।

आज की परिस्थितियाँ हममें से प्रत्येक जाग्रत आत्मा से यही आह्वान करती हैं कि इस अंधकार से, अवांछनीयता से लड़ने के लिए हम, हमारे भीतर प्रकाश को पैदा करें। कितना भी गहन अंधकार क्यों न हो, प्रकाश की एक छोटी किरण वहाँ पहुँचती है तो वो अंधकार तिरोहित हो ही जाता है। आज जब सब ओर अनीति, अन्याय, अवांछनीयता का साम्राज्य बिखरा दिखाई पड़ता है तो यह हमें प्रेरित करता है कि इन विषम परिस्थितियों के निवारण के लिए हम प्रतिकार का प्रतीक बनें।

भगवान ने इस संसार में दोनों ही तरह की व्यवस्थाओं को समान रूप से स्थान दिया है—एक का नाम है ध्वंस और दूसरे का नाम है सृजन। सृष्टि में संतुलन बनाए रखने के लिए दोनों जरूरी हैं। इमारत यदि गलत बन जाए तो वहाँ नए का निर्माण करने से पूर्व, पुराने को तोड़ना जरूरी हो जाता है। बीज यदि टूटने को तैयार न हो, उसकी परत गलने को तैयार न हो तो उसमें से नए पौधे का निकल पाना संभव नहीं हो पाता। चिकित्सक यदि सर्जरी के लिए तैयार न हो तो ट्यूमर को निकाल पाना संभव नहीं हो पाता। माँ यदि प्रसव की पीड़ा से गुजरने को तैयार न हो तो एक नई आत्मा को जीवन दे पाना संभव नहीं हो पाता। नींव का पत्थर यदि टूटने को तैयार न हो तो एक इमारत का बना पाना संभव नहीं हो पाता। टूटना और टूटे के स्थान पर नए का बनना—ये दोनों प्रक्रियाएँ, एकदूसरे से विपरीत दिखते हुए भी एकदूसरे के साथ गहराई से जुड़ी हुई हैं।

ध्वंस की आवश्यकता, प्रतिकार की आवश्यकता इसलिए पड़ती है, ताकि अवांछनीय तत्त्वों को, अनर्गल तत्त्वों को हटाया जा सके। वैसे तो दुनिया के अधिकतम लोग सामान्य शिक्षाओं से ही सुधर जाते हैं, परंतु कुछ ऐसे भी होते हैं, जिन पर शिक्षाओं का कोई असर नहीं पड़ता। आप कितना भी उनको बोलते रहें—वे अनीति- पर-अनीति करते चले जाते हैं। अन्यथा यह परंपरा तो आदिकाल से चली आ रही है . . . धर्म का आचरण करो, सत्य बोलो, दूसरों के साथ कोई बुरा कार्य न करो—दुनिया का प्रत्येक धर्म यही शिक्षा देता है, पर यदि उन शिक्षाओं से सभी बदल गए होते तो भगवान राम को लंका जाकर युद्ध करने की आवश्यकता क्यों पड़ती और भगवान कृष्ण को महाभारत करने की जरूरत क्यों पड़ती?

ऐसे लोग भले ही संख्या में कम हों, पर हर युग में, हर काल में, ऐसे प्राणी जन्म लेते ही हैं, जिनके सोचने के तरीके में ऐसी अनैतिकता व्याप जाती है कि उनको सुधारने के लिए भगवान के पास संहार के अलावा अन्य कोई उपाय शेष नहीं रह जाता। ऐसे व्यक्तित्व; फिर चाहे उनका नाम रावण, दुर्योधन, दुःशासन हो— इन्हीं को सुधारने के लिए फिर भगवान को अवतरण लेना पड़ता है। इन क्षणों में भगवान पुचकार के लिए नहीं आते, वरन प्रतिकार के लिए आते हैं। ऐसे ही क्षणों में भगवान अधर्म का नाश करने के

लिए एवं धर्म की प्रतिष्ठा करने के लिए आते हैं। ऐसे समय में भगवान त्रिशूल उठाकर, सुदर्शन चक्र तानकर एवं धनुष उठाकर आते हैं।

ऐसा इसलिए; क्योंकि मनुष्य के अंतरंग में दैवी और आसुरी शक्तियाँ दोनों ही कार्य करती हैं। आसुरी वृत्तियाँ, नकारात्मक शक्तियाँ हमें नीचे गिराती हैं—पतन की ओर ले जाती हैं। जैसे पानी बिना किसी विशेष प्रयास के ढलान पर लुढ़कता चला जाता है, वैसे ही मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियाँ बिना किसी के सिखाए, बिना किसी बाहर के प्रशिक्षण के पतन की ओर बढ़ती चली जाती हैं और फिर व्यक्ति का, समष्टि का—दोनों का संतुलन बिगड़ जाता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य के अंतरंग का परिष्कार भी आवश्यक हो जाता है और वातावरण का परिशोधन भी आवश्यक हो जाता है।

यदि कूड़ा-करकट घर में भरता जाए और कोई झाड़ू न लगाए तो क्या होगा? यदि शरीर पर मैल की परतें चढ़ती जाएँ और कोई न नहाए तो क्या होगा? ऐसी स्थिति में बदबू इतनी भर जाएगी कि रहना मुश्किल हो जाएगा। इसीलिए आज की परिस्थितियाँ यह आह्वान करती हैं कि हम अनीति का प्रतिरोध करने के लिए समय पर तैयार हों। अँधेरे का विरोध करना इसलिए जरूरी होता है, ताकि समय रहते उसे यह संदेश दिया जा सके कि हमें आपका आतंक स्वीकार नहीं है।

यदि हमें कोई गलत करता दिखाई पड़ता है और हम उसकी हाँ-में-हाँ मिला देते हैं तो हम उसे पाप करने की खुली छूट भी दे देते हैं। यदि ऐसे में हम सीना तानकर खड़े हो जाएँ कि हम गलत आदमी नहीं हैं और आपके गलत काम में सहयोग नहीं करेंगे तो बुराई ज्यादा दिन टिक नहीं पाएगी। आज की परिस्थितियाँ हम जाग्रत आत्माओं से ऐसा ही एक सशक्त प्रयत्न करने की माँग करती हैं। ❑

किसी धर्मात्मा ने जंगल में एक सुंदर मकान और उसी की बगल में सुरम्य उद्यान इस उद्देश्य से बनवा रखा था कि उधर से आने-जाने वाले यात्रीगण उसमें ठहरें, विश्राम करें और आनंदित रहें। समय-समय पर अनेक लोग आते और ठहरते रहे। वहाँ पर नियुक्त संरक्षक हरेक से पूछता—"बताइए मालिक ने इसे किन लोगों के लिए बनाया है" तो आने वाले अपनी-अपनी दृष्टि से उसका उद्देश्य बताते रहे।

चोरों ने कहा—"एकांत में सुस्ताने, हथियार जमा रखने और माल का बँटवारा करने के लिए।"

व्यभिचारियों ने कहा—"बिना किसी खटके और रोक-टोक के स्वेच्छाचारिता बरतने के लिए।"

जुआरियों ने कहा—"जुआ खेलने और लोगों की आँखों से बचे रहने के लिए।"

कलाकारों ने कहा—"एकांत का लाभ लेकर एकाग्रतापूर्वक कला अभ्यास करने के लिए।"

संतों ने कहा—"शांत वातावरण में भजन करने और ब्रह्मलीन होने के लिए।"

धर्म के संदर्भ में भी जब इसी तरह अलग-अलग व्याख्याएँ होने लगें तो इसे संप्रदाय समझना चाहिए।

धर्म तो मनुष्य मात्र के लिए एक ही हो सकता है। उसे व्यक्तिगत कर्त्तव्य और सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह समझा जाना चाहिए।

अप्प दीपो भव

भगवान बुद्ध का अंतिम समय निकट आ गया था, उनके सबसे निकट व अनन्य शिष्य आनंद बहुत विचलित थे कि भगवान हमेशा के लिए बिछड़ने वाले हैं। अत: आनंद के अस्तित्व को मथ रहा आर्त्त प्रश्न था कि अपने भगवान के बिना वे कैसे रह पाएँगे? यह तो अपने सर्वस्व को खोकर अनाथ होने जैसी स्थिति थी। भगवान बुद्ध आनंद व अन्य निकटस्थ शिष्यों की मन:स्थिति को समझ रहे थे और वे इसका कालजयी समाधान देते हुए बोले—**'अप्प दीपो भव'** अर्थात अपना दीपक आप बनो।

इस संदेश को पाकर आनंद कुछ आश्वस्त हुए, उनके अंतर्प्रज्ञा के चक्षु खुले और वे अपनी साधना में मग्न हो गए। श्रीमद्भगवद्गीता में उद्धरेदात्मनात्मानं श्लोक के रूप में यही संदेश भगवान श्रीकृष्ण विषादग्रस्त अर्जुन को देते हुए दिखते हैं और स्वयं ही अपने उद्धार की बात करते हैं, तथा मन जैसे चंचल एवं प्रमथन स्वभाव वाले तत्त्व को अभ्यास एवं वैराग्य के साथ साधने का मार्गदर्शन देते हैं। यह प्रकारांतर में व्यक्ति के साधनात्मक पुरुषार्थ के ही महत्त्व को इंगित करता है।

किसी ने बहुत सही कहा है कि करोड़ों बुद्ध, ईसा और भगवान के अवतार भी कुछ नहीं कर सकते, जब तक कि व्यक्ति स्वयं कमर कसकर अपने उद्धार के लिए कटिबद्ध नहीं हो जाता। परमपूज्य गुरुदेव ने आत्मदेव की साधना, जीवन देवता की उपासना-साधना के रूप में इसी दर्शन का प्रतिपादन किया है।

वे कहते हैं कि देवी-देवता या कल्पित भगवान कब प्रसन्न होंगे व कब आशीर्वाद देंगे, मंत्रों के चमत्कार कब फलित होंगे, कुछ कह नहीं सकते, किंतु जीवन देवता, आत्मदेव की साधना का फल प्रत्यक्ष है। इसकी साधना के फल तत्काल मिलते हैं। इसे गुरुदेव व्यावहारिक अध्यात्म के नाम से प्रतिपादित करते हैं, जिसके अंतर्गत वे आत्वमबोध, तत्त्वबोध, संयम, स्वाध्याय, सेवा-साधना आदि पर बल देते हैं।

स्वामी विवेकानंद इसी व्यावहारिक अध्यात्म का प्रतिपादन करते हुए साधकों को दिशाबोध देते हुए गीता से अधिक फुटबॉल खेलने को महत्त्व देते थे। वे कहते थे कि एक बीमार व्यक्ति अध्यात्म की सूक्ष्मता को कैसे समझ सकता है। वे पहले एक सबल शरीर एवं पुष्ट मांसपेशियों के विकास के लिए युवाओं को प्रेरित करते थे, अपने पैरों पर खड़ा होने व चरित्र गठन की बात करते थे। उनका मानना था कि एक नीरोग एवं स्वस्थ व्यक्ति गीता को अधिक बेहतर समझ सकेगा। साथ ही स्वामी जी कहते थे कि व्यक्ति को स्वयं ही अंदर से आध्यात्मिक बनना होगा, कोई दूसरा आपको आध्यात्मिक नहीं बना सकता। वे कहते थे कि अंत:प्रेरित होकर अपना उत्थान करते हुए परम लक्ष्य की ओर बढ़ना होगा।

जीवन में अभ्युदय पाने के लिए मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने व्यक्तित्व को संस्कारयुक्त बनाए।

हालाँकि अध्यात्म पथ में गुरु का अपना महत्त्व रहता है, लेकिन अंतत: शिष्य को अपनी यात्रा स्वयं ही तय करनी होती है, अपने कर्मों का भोग स्वयं ही पूरा करना होता है, अपने प्रारब्धजन्य कर्मों व संस्कारों की कारा को स्वयं ही तोड़ना होता है। गुरु एक संबल, एक मार्गदर्शन व प्रेरणा के रूप में पथ में रहता है। कोई सोचे कि उसके कंधों पर चढ़कर अध्यात्म पथ, जीवन की वैतरणी को हम पार कर लेंगे तो वह एक भूल सिद्ध होती है।

भगवान बुद्ध के अप्प दीपो भव के अंतिम संदेश में आध्यात्मिक जीवन के इसी परम सत्य का भाव निहित है, जिसके आधार पर हर नैष्ठिक साधक अपने प्रचंड पुरुषार्थ के आधार पर अपनी नियति को गढ़ता है, वर्तमान के हर पल का सदुपयोग करते हुए अपने भविष्य को सँवारता है। यही जीवन का राजमार्ग है, इसका कोई शॉर्टकट नहीं। ❑

गुरुकृपा से होते हैं भगवद्दर्शन

यदि सद्गुरु की कृपा हो जाए तो साधक का जीवन अध्यात्म की अलौकिक खुशबू से सराबोर हो महक उठता है। शिष्य के अंतस् में अलौकिक आनंद उमगने, उमड़ने लगता है। इतना ही नहीं गुरुकृपा से उसके लिए भगवत्प्राप्ति, भगवद्दर्शन का द्वार भी सहज ही खुल जाता है, पर हाँ! सद्गुरु की कृपा पाने के लिए शिष्य को शिष्यत्व व साधना की कसौटी पर भी शतप्रतिशत खरा उतरना होता है। एकनाथ भी उन्हीं शिष्यों में से एक थे, जो साधना व शिष्यत्व की कसौटी पर खरा उतरकर गुरुकृपा के पात्र बने और भगवद्दर्शन कर सके।

ऐसे सद्गुरु व शिष्य भी विरले ही होते हैं। सच यह भी है कि एकनाथ जैसी दिव्य आत्माएँ दिव्यता, पवित्रता व भगवन्मय कुल-परिवार में ही जन्म लिया करती हैं। संत एकनाथ का जन्म बड़े ही दिव्य, पवित्र व भगवत्परायण परिवार में हुआ था। पूर्वजन्मों में की गई भगवत्-उपासना के प्रबल संस्कार के फलस्वरूप बचपन से ही उनके हृदय में भगवत्प्रेम उमगने, उमड़ने लगा था। ऐसे सद्भक्त को सन्मार्ग दिखाने के लिए प्रभु उसे किसी ब्रह्मनिष्ठ गुरु की प्राप्ति का मधुर सुयोग अवश्य ही उपलब्ध कराते हैं।

बड़े होने पर प्रभुकृपा से ही संत एकनाथ को जनार्दन स्वामी जैसे ब्रह्मनिष्ठ गुरु का दिव्य सान्निध्य प्राप्त हुआ। गुरु के मार्गदर्शन में साधना करते हुए उनकी भगवत्प्रीति और भी प्रगाढ़ होती गई। संध्यावंदन में वे कभी चूकते नहीं थे। सायं-प्रातः भगवत्-उपासना, भगवद्ध्यान, मध्याह्न में पुनः संध्यावंदन, स्तोत्र-पाठ, देव-पूजन, गुरु-पूजन, वंदन आदि वे नित्य नियमपूर्वक करते थे।

भगवद्उपासना में उनकी नियमितता व शुचिता देखकर लोग दाँतों तले उँगली दबा लेते थे। पूर्णिमा की रात को चंद्रप्रभा जैसे आकाश में सर्वत्र फैल जाती है, वैसे ही एकनाथ का भगवत्प्रेम पूर्णिमा की चंद्रप्रभा की तरह उनके हृदय में फैलने लगा था।

गुरु के निर्देश पर वे नित्य भगवद्उपासना, भगवद्-ध्यान के साथ-साथ रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रंथों का नित्य स्वाध्याय किया करते। एकनाथ के गुरु श्री जनार्दन स्वामी गुरु दत्तात्रेय के उपासक थे और उपास्यदेव के सगुण रूप का दर्शन उन्हें प्रत्यक्ष हुआ करता था। इस प्रकार जनार्दन स्वामी को श्रीदत्त भगवान के दर्शन नित्य हुआ करते थे। अपने शिष्य एकनाथ की सच्ची गुरुभक्ति व भगवद्भक्ति से प्रसन्न होकर जनार्दन स्वामी ने उन्हें भी श्रीदत्त भगवान के दर्शन पाने का सुयोग प्रदान करने का संकल्प लिया।

एकनाथ ने लगातार छह वर्ष तक बड़े ही भक्ति-भाव से जनार्दन स्वामी की अपूर्व सेवा की थी। अस्तु वे उनके अनुग्रह के पूर्ण पात्र बने। वे हर प्रकार से अपने गुरु की सेवा किया करते थे। जनार्दन स्वामी जब समाधि लगाते, तब एकनाथ द्वार पर खड़े होकर बाहर की सभी बाधाओं का निवारण करते। गुरु-गृह में कई आश्रित, नौकर-चाकर, सेवक आदि थे, पर एकनाथ उनकी कोई राह न देखकर स्वयं ही बड़े प्रेम और उत्साह से तन-मन लगाकर गुरु की परिचर्या करते, सेवा करते।

वे ईश्वर से यही प्रार्थना किया करते कि हे प्रभु! गुरुसेवा करने की मुझे इतनी सामर्थ्य दें कि सब नौकर-चाकरों का काम मैं अकेला ही कर सकूँ। वे अपनी भूख-प्यास की सुध न रखकर सदैव गुरु-सेवा में तत्पर रहते। उनके लिए तो गुरुसेवा ही सर्वोपरि थी। गुरु का संतोष ही उनका संतोष था। गुरु के कहे एक-एक शब्द उनके लिए शास्त्र थे। गुरु की मूर्ति ही उनके लिए परमात्मा की मूर्ति थी। गुरु का पावन आश्रम ही उनका घर था, उनका स्वर्ग था। ऐसी उनकी भावना थी और ऐसी ही परम शुद्ध भावना से वे अपने गुरु की अखंड सेवा करते थे। गुरुसेवा में वे इतने तल्लीन हो जाते कि उन्हें अपनी देह का भी विस्मरण हो जाया करता था।

इस प्रकार गुरु की सेवा करते-करते एकनाथ के संस्कार धुल गए, चित्त निर्मल हो गया, राग-द्वेष आदि रिपु शरीर छोड़कर चले गए, इंद्रियाँ वासनारहित हो गईं, काया तेजोमय हो गई, अंतस् में उतरा प्रभु का प्रकाश-पुंज उनके रोम-रोम से प्रकट होने लगा। इस प्रकार की गई गुरु-

सेवा-गुरुभक्ति से उनकी चित्तशुद्धि हुई और वे गुरुकृपा के अधिकारी हुए।

ऐसी शिष्यवृत्ति के साथ रहते हुए उन्होंने गुरुमुख से ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव और श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथ सुने और उससे उनका आत्मबोध जाग्रत हुआ। उस आत्म-जाग्रति, आत्मबोध की अवस्था में एकनाथ बोल पड़े कि भवसागर से पार उतरने के लिए मुख्य साधन गुरुसेवा, गुरुभजन ही है। गुरु ही माता-पिता और गुरु ही देवता हैं। शरीर, मन, वाणी और प्राण से गुरु का ही अनन्य ध्यान हो—यही गुरुभक्ति है। मुख में सद्गुरु का नाम हो, हृदय में सद्गुरु का प्रेम हो और देह से अहर्निश सद्गुरु का कार्य हो—यही गुरुभक्ति है। गुरुसेवा में ऐसा मन लगे कि शिष्य स्त्री, पुत्र, धन भी भूल जाए, अपना मन भी भूल जाए और यह भी ध्यान न हो कि मैं कौन हूँ—यही सच्ची गुरुभक्ति है। गुरु ही भगवान, गुरु ही परब्रह्म और गुरु-भजन ही भगवद्भजन है। गुरु और भगवान, दोनों एक ही हैं।

इस प्रकार सद्गुरु और परमात्मा को एकदूसरे से अभिन्न जानकर एकनाथ ने परम निष्ठा से छह वर्ष तक गुरुसेवा करते-करते अपना पृथक अस्तित्व ही भुला दिया। एकनाथ की ऐसी गुरुभक्ति देखकर ही जनार्दन स्वामी ने उन्हें श्रीदत्त भगवान का दर्शन कराने का संकल्प किया और आखिरकार वह मधुर-मनोहर पल आ ही गया, जब एकनाथ ने अपने गुरु जनार्दन की शरण में जाकर, आत्मदृष्टि पाकर परब्रह्म भगवान दत्त को अपनी आँखों से देखा।

वह मधुर प्रसंग कुछ इस प्रकार है। जनार्दन स्वामी जहाँ नित्य समाधि लगाया करते थे, वहाँ एक सुरम्य सरोवर था, जिसके चारों ओर सुगंधित व रंग-बिरंगे खिले हुए पुष्प व अन्य वृक्ष शोभायमान थे। वह स्थान ऐसा निर्जन था कि वहाँ मनुष्यों के पैरों की आहट भी कभी सुनाई नहीं देती थी। वह स्मरणीय निर्जन स्थान समाधि के सर्वथा उपयुक्त था। वहीं आसन लगाकर जनार्दन स्वामी नित्य समाधि का आनंद लेते थे। उनका गुरुवार का तो सारा दिन ही वहीं बीतता था। वहाँ एकनाथ को गुरु के दर्शन और वार्त्ता का सुयोग प्राप्त हुआ करता था। जनार्दन स्वामी को इच्छा हुई कि एकनाथ को भी श्रीदत्त भगवान का दर्शन प्राप्त हो। अस्तु उन्होंने एकनाथ को समझाते हुए कहा कि यहाँ श्रीदत्त भगवान के सिवा और कोई भी नहीं आता और भगवान चाहे जिस वेश में आएँ, उन्हें देखकर तुम घबराना नहीं।

इस प्रकार एकनाथ वहाँ श्रीदत्त भगवान की बाट जोहते रहे। जब जनार्दन स्वामी पूजा कर चुके, तभी श्रीदत्त भगवान फकीर के वेश में वहाँ प्रकट हो गए। उनका सर्वांग चमड़े से ढका हुआ था। साथ में श्वान के रूप में कामधेनु थी। फकीररूपी भगवान के नेत्र लाल-लाल थे। यह भयानक रूप देखकर एकनाथ कुछ चकित हुए। जनार्दन स्वामी और श्रीदत्त भगवान आत्मसुख की बातें करने लगे। फिर श्रीदत्त की आज्ञा से जनार्दन स्वामी ने उस कामधेनु को दुहकर दूध निकाला और मिट्टी के एक पात्र में दोनों ने यथेष्ट भोजन करके अपनी अभिन्नता एकनाथ को दिखा दी।

भोजन के पश्चात वह पात्र धोने के लिए स्वामी ने एकनाथ के हाथ में दिया। एकनाथ ने जल से उसको धोया, धोकर उसी धोवन को 'यही प्रसाद है, यही भागीरथी है, यही स्वानंदवास का साधन है' कहकर बड़ी भक्ति से उसका पान किया। तब श्रीदत्त ने एकनाथ को पास बुलाया। एकनाथ ने परम प्राप्ति का समय जानकर गुरु व श्रीदत्त भगवान दोनों के चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गए। उन्होंने देखा, गुरु ही तो परमगुरु हैं और परमगुरु ही तो गुरु हैं। इस अभेद-भावना, अभेद स्थिति को वे तटस्थ भाव से देखते रहे, निहारते रहे।

तब श्रीदत्त भगवान ने एकनाथ की ओर देखा और जनार्दन स्वामी से कहा कि यह महाभागवत उत्पन्न हुआ है। इसके द्वारा भागवत-धर्म का प्रचार होगा। सहस्रों मनुष्यों को यह भक्ति-पंथ में लगा देगा और जीवोद्धार करने वाले उत्तम ग्रंथ की रचना भी करेगा। यह कहकर श्रीदत्त भगवान ने एकनाथ का आलिंगन किया। तब जनार्दन स्वामी को परमानंद हुआ और 'दत्त-जनार्दन-एकनाथ' तीनों समरस हो गए। फिर एकनाथ को जब श्रीदत्त भगवान ने अपने दिव्य रूप का दर्शन कराया, तब दत्त, जनार्दन तथा अपने सहित सकल विश्व को उन्होंने अभेद रूप से देखा। उस अलौकिक पल का वर्णन करते हुए संत एकनाथ ने कहा—"मैं सदा उसी अभेद रूप का, उसी एक का गुणगान करता हूँ, उसी एक का ध्यान करता हूँ, उसी को अगुणी देखता हूँ, उसी को सगुणी देखता हूँ और उसी को गुणातीत देखता हूँ।"

इसके पश्चात श्रीदत्त भगवान अंतर्धान हुए और जनार्दन स्वामी अपने काम पर गए। एकनाथ को श्रीदत्त दर्शन का परम आनंद हुआ। उन्हें अनुभव हुआ कि सगुण-निर्गुण दोनों एक ही हैं। दत्त ही श्रीकृष्ण हैं, वे ही विट्ठल हैं और वे ही राम हैं। जिस स्वरूप में उनका ध्यान किया जाए उसी रूप में वे ही प्रकट होते हैं। फिर एकनाथ ने अपने मुख से 'श्रीदत्त-श्रीदत्त' उच्चारण करते हुए, आनंद से गाते-नाचते हुए श्रीदत्त भगवान की पूजा की और एकनाथ जनार्दन में और जीव, शिव में लीन होकर मुक्त हो गया।

इस प्रकार सच्ची भगवद्भक्ति, गुरुभक्ति से, गुरुसेवा से संत एकनाथ को भगवत्प्राप्ति हुई। निस्संदेह सच्ची गुरुभक्ति, भगवद्भक्ति एक दिन अवश्य ही फलीभूत होती है और साधक को निहाल कर जाती है। गुरुकार्य में तन, मन, धन से लगे रहना ही वास्तविक गुरुसेवा है, गुरुभक्ति है और ऐसी गुरुसेवा, गुरुभक्ति से साधक को गुरुकृपा अवश्य ही प्राप्त होती है और गुरुकृपा से उसे भौतिक व आध्यात्मिक, दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है। गुरुकृपा से उसके लिए भगवद्दर्शन भगवत्कृपा का द्वार भी सहज ही खुल जाता है। ❑

एक नौजवान अपने घोड़े के साथ लंबी यात्रा पर निकला। मार्ग में घोड़े को प्यास लगी। बहुत दूर चलने के बाद उसे एक गाँव मिला, जिसमें एक रहट लगी हुई थी। उसने आस-पास पता किया कि रहट कौन चलाता है तो पता चला कि रहट के साथ लगी झोंपड़ी में रहने वाली महिला रहट चला देगी। महिला से अनुरोध करने पर महिला ने रहट चलाई, परंतु रहट की आवाज आते ही नौजवान का घोड़ा बिदक गया।

नौजवान ने महिला से आग्रह किया कि वह रहट बंद कर दे। महिला ने रहट बंद कर दी, परंतु रहट बंद होते ही पानी भी आना बंद हो गया। नौजवान ने महिला से पानी चलाने का अनुरोध किया तो रहट की आवाज आनी प्रारंभ हो गई।

नौजवान बोला—"बहन! क्या यह संभव नहीं कि रहट भी चलती रहे और आवाज भी न आए?" महिला बोली—"भाई! ऐसा कैसे संभव है? रहट घूमेगी तो आवाज भी करेगी। यदि पानी पीना है तो उसके साथ चलती आवाज को भी बरदाश्त करना होगा।"

मनुष्य भी ऐसे ही जीवन से मात्र सुखों की आकांक्षा करता है, किंतु दुःख स्वीकारने को तैयार नहीं होता। जीवन तो सुख-दुःख, दोनों का मेल है—एक को भुलाकर दूसरे का रह पाना संभव नहीं।

पर्व विशेष (दीक्षा दिवस)

गायत्री-साधना संग जीवन का सर्वतोन्मुखी उन्नयन

चौबीस अक्षर के परम पुनीत गायत्री मंत्र में स्वयं में अनगिनत रहस्य समाये हुए हैं। वेदों में जिस आदर के साथ इस मंत्र का उल्लेख हुआ है, उससे इसकी विशिष्टता का बोध होता है। इसकी विशिष्ट क्षमता के कारण ही अथर्ववेद ने इसे समस्त मंत्र सत्ता का मूल अर्थात वेदमाता कहा है।

परमपूज्य गुरुदेव का आध्यात्मिक जीवन इसी की साधना के साथ प्रारंभ हुआ, इसी के शोध-अनुसंधान में बीता और इसी के बल पर युग निर्माण का युगांतरीय महापुरुषार्थ भी संपन्न हुआ तथा जीवन का अवसान भी गायत्री जयंती के दिन गायत्री महाशक्ति के वरदपुत्र के रूप में उससे एकाकार होकर हुआ। पूज्यवर के शब्दों में, गायत्री के गर्भ में वह सभी तत्त्वज्ञान भरा हुआ है, जिसकी व्याख्या के लिए वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, दर्शन, उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, नीति एवं सूत्र ग्रंथों की रचना की गई है।

आश्चर्य नहीं कि मंत्र के रूप में गायत्री महामंत्र भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में सबसे पुनीत मंत्र माना जाता रहा है, जिसे आदिमंत्र, गुरुमंत्र, महामंत्र की संज्ञा दी गई है। उपनयन, दीक्षा के समय इसी के माध्यम से युगों से मंत्र संस्कार संपन्न होते आ रहे हैं।

गायत्री मंत्र से मूलत: एक प्रार्थना भी है, जिसमें सबके लिए सद्बुद्धि की प्रार्थना की गई है। साथ ही इसके देवता सविता हैं, जिनका प्रात:कालीन उदीयमान स्वर्णिम सूर्य के रूप में ध्यान किया जाता है। इस रूप में गायत्री महामंत्र एक सार्वभौम मंत्र है, जिसके महत्त्व को वर्तमान आस्था संकट से गुजर रहे सांस्कृतिक टकराहट भरे इस दुर्बद्धिप्रधान युग में भली भाँति समझा जा सकता है।

हर युग में ऋषि-मनीषियों के गायत्री मंत्र के संदर्भ में विशिष्ट भाव रहे हैं। श्रीमद्भगवद्गीता (10.35) में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि छंदों में मैं गायत्री हूँ। इसी तरह छांदोग्योपनिषद् (3.12.1) में लिखा गया है, इस विश्व में जो कुछ भी है, वह समस्त गायत्रीमय है। ऋषि विश्वामित्र के मत में, गायत्री के समान चारों वेदों में मंत्र नहीं है। संपूर्ण वेद, यज्ञ, दान, तप गायत्री मंत्र की एक कला के समान भी नहीं हैं।

ऋषि मनु के अनुसार ब्रह्मा जी ने तीनों वेदों का सार तीन चरण वाला गायत्री मंत्र निकाला। गायत्री से बढ़कर पवित्र करने वाला और कोई मंत्र नहीं है। योगीराज याज्ञवल्क्य के शब्दों में, वेदों का सार उपनिषद् हैं और उपनिषद् का सार व्याहृतियों समेत गायत्री है। गायत्री वेदों की जननी हैं, पापों का नाश करने वाली हैं, इससे अधिक पवित्र करने वाला अन्य कोई मंत्र स्वर्ग और पृथ्वी पर नहीं है।

इसी तरह अत्रि मुनि के कथन में, गायत्री आत्मा का परम शोध करने वाली है। उसके प्रताप से कठिन दोष और दुर्गुणों का परिमार्जन हो जाता है। जो मनुष्य गायत्री तत्त्व को भली प्रकार समझ लेता है, उसके लिए इस संसार में कोई सुख शेष नहीं रह जाता।

महर्षि व्यास के शब्दों में, जिस प्रकार पुष्प का सार शहद, दुग्ध का सार घृत है, उसी प्रकार समस्त वेदों का सार गायत्री है। सिद्ध की हुई गायत्री कामधेनु के समान है।

महर्षि वसिष्ठ के अनुसार, मंदमति, कुमार्गगामी और अस्थिरमति भी गायत्री के प्रभाव से उच्च पद को प्राप्त करते हैं, फिर उनकी सद्गति होना निश्चित है। जो पवित्रता और स्थिरतापूर्वक गायत्री की उपासना करते हैं, वे आत्मलाभ प्राप्त करते हैं।

नारद मुनि के कथन में, गायत्री भक्ति का ही स्वरूप है। जहाँ भक्तिरूपी गायत्री है, वहाँ श्री नारायण का निवास होने में कोई संदेह नहीं करना चाहिए। इसी तरह आधुनिक ऋषि-मनीषी एवं महामानव भी मुक्तकंठ से गायत्री शक्ति के माहात्म्य का बखान करते हैं।

लोकमान्य तिलक का कहना था कि जिस बहुमुखी दासता के बंधनों से भारतीय प्रजा जकड़ी हुई है, उसके लिए आत्मा के अंदर प्रकाश उत्पन्न होना चाहिए, जिससे सत् और असत् का विवेक हो, कुमार्ग को छोड़कर श्रेष्ठ मार्ग

पर चलने की प्रेरणा मिले—गायत्री मंत्र में यही भावना विद्यमान है।

कवींद्र रवींद्रनाथ टैगोर का मानना था कि भारतवर्ष को जगाने वाला जो मंत्र है, वह इतना सरल है कि एक ही श्वास में उसका उच्चारण किया जा सकता है। वह है—गायत्री मंत्र। इसी तरह डॉ० एस० राधाकृष्णन के शब्दों में—यदि हम इस सार्वभौमिक प्रार्थना गायत्री पर विचार करें, तो हमें मालूम होगा कि यह वास्तव में कितना ठोस लाभ देती है। गायत्री हममें फिर से जीवन का स्रोत उत्पन्न करने वाली आकुल प्रार्थना है।

परमपूज्य गुरुदेव को 10 वर्ष की आयु में गायत्री मंत्र की दीक्षा देने वाले महामना मदनमोहन मालवीय जी के शब्दों में—ऋषियों ने जो अमूल्य रत्न हमें दिए हैं, उनमें से एक अनुपम रत्न गायत्री है। गायत्री से बुद्धि पवित्र होती है। ईश्वर का प्रकाश आत्मा में आता है। साथ ही यह भौतिक अभावों को दूर करती है। स्वामी विशुद्धानंद जी के अनुसार—आत्मकल्याण के लिए आत्मा की शुद्धि आवश्यक है। मन की शुद्धि के लिए गायत्री मंत्र अद्‌भुत है। ईश्वरप्राप्ति के लिए गायत्री जप को प्रथम सीढ़ी समझना चाहिए।

महर्षि रमण के मत में—योग विद्या के अंतर्गत मंत्र विद्या बड़ी प्रबल है। मंत्रों की शक्ति से अद्‌भुत सफलताएँ मिलती हैं। गायत्री ऐसा मंत्र है, जिससे आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार के लाभ मिलते हैं। जगद्‌गुरु शंकराचार्य के शब्दों में—गायत्री की महिमा का वर्णन करना मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है। आत्मप्राप्ति करने की दिव्यदृष्टि जिस बुद्धि से प्राप्त होती है, उसकी प्रेरणा गायत्री द्वारा होती है। गायत्री आदि मंत्र है। उसका अवतार दुरितों को नष्ट करने और ऋत के अभिवर्द्धन के लिए हुआ है।

इस तरह हर युग में गायत्री-साधना का वर्णन एवं महिमागान मुक्त कंठ से होता रहा है। इस युग में गायत्री के सिद्धसाधक परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने इस विषय पर जीवनपर्यंत शोध एवं साधना के उपरांत इस संदर्भ में विपुल साहित्य का सृजन किया है, जो साररूप में गायत्री महाविज्ञान में संकलित है। इसको पढ़कर तथा गायत्रीतीर्थ शांतिकुंज हरिद्वार में आकर इस संदर्भ में आवश्यक मार्गदर्शन लिया जा सकता है।

वेदों में जहाँ ब्रह्मर्षि विश्वामित्र को इस मंत्र के द्रष्टा ऋषि होने का गौरव प्राप्त है, तो वहीं इस युग में परमपूज्य गुरुदेव द्वारा गायत्री मंत्र को लोकसुलभ करने के निमित्त किए गए भागीरथी प्रयास के आधार पर उन्हें आधुनिक युग के विश्वामित्र की संज्ञा दी जाती है।

पूज्य गुरुदेव ने गायत्री मंत्र की साधना के संदर्भ में पाँच विधान दिए हैं—(1) दैनिक साधना, (2) नौ दिवसीय साधना, (3) चालीस दिवसीय साधना, (4) एक वर्ष की उद्यापन साधना एवं (5) पुरश्चरण साधना। इनकी साधना विधि को गायत्री महाविज्ञान में विस्तार से पढ़ा व समझा जा सकता है।

सर्वसाधारण साधकों के लिए गायत्रीतीर्थ शांतिकुंज में हर माह 1 से 9, 11 से 19 व 21 से 29 की तिथियों में नौ

याज्ञवल्क्य राजा जनक की सभा में विराजमान थे और शंकाओं का समाधान कर रहे थे।

जनक ने पूछा—"प्रकाश का स्त्रोत क्या है और वह न मिले तो किसका आश्रय पकड़ा जाए?"

याज्ञवल्क्य ने कहा—"सूर्य प्रमुख है। वह न हो तो चंद्रमा, चंद्रमा न हो तो दीपक और यदि दीपक भी न हो तो विज्ञजनों से पूछकर प्रकाश प्राप्त करें।"

जनक ने पूछा—"कोई बताने वाला न दीखे तब?"

याज्ञवल्क्य ने कहा—"तब अपने अंत:विवेक के आधार पर मार्ग अपनाएँ। सांसारिक प्रकाश न मिलने पर उसी की ज्योति यथार्थता बताती है।"

दिवसीय गायत्री-साधना सत्र चलते हैं तथा नवरात्र में अनुष्ठान का महत्त्व अधिक बढ़ जाता है। दीक्षित होने के बाद इसका दैनिक उपासना-साधना क्रम उचित रहता है, जिसमें षट्कर्म के बाद गायत्री के अर्थ चिंतन सहित जप-ध्यान का विधान रहता है।

गायत्री का पहला अक्षर ॐ परब्रह्म का शब्दशरीर है, मूलस्वरूप है। **भूःभुवःस्वः**—अर्थात परमात्मा तीनों लोकों में व्याप्त सर्वव्यापी सत्ता है। **तत् सवितुः वरेण्यं**— अर्थात हम उस ब्रह्मस्वरूप सविता देवता का वरण करते हैं तथा **भर्गो देवस्य धीमहि**—अर्थात उसके पापनाशक भर्ग, दिव्यस्वरूप का ध्यान करते हैं, धारण करते हैं। **धियो यो नः प्रचोदयात्**—अर्थात जो हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करें।

सूक्ष्मदर्शियों का कहना है कि गायत्री मंत्र के 24 अक्षर शरीर के सूक्ष्मचक्रों, उत्पत्यिकाओं व मर्मस्थलों पर एक तरह से प्रहार कर इन्हें चैतन्य करते हैं, जिससे इनकी सुप्त शक्तियों के जागरण का क्रम शुरू होता है, साधक के व्यक्तित्व में अद्भुत रूपांतरण होता है तथा व्यक्तित्व भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों दृष्टि से संपन्न बनता है।

गायत्री-साधना की फलश्रुति के बारे में वेदों में कहा गया है—**स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः, प्राणं, प्रजां, पशुं, कीर्तिं, द्रविणं, ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥** अर्थात गायत्री-साधना साधक को भौतिक आयु, प्रजाबल, धनबल, कीर्ति इत्यादि ही नहीं, वरन आध्यात्मिक यथा— ब्रह्मवर्चस से भी संपन्न करती है। कहने का अर्थ स्पष्ट है कि गायत्री-साधना आंतरिक एवं बाह्य दोनों दृष्टि से साधक को संपन्न बनाती है एवं उसका कल्याण करती है।

अतः नवरात्र-साधना के समय आत्मकल्याण के साथ अपने सर्वतोमुखी उत्कर्ष के इच्छुक साधकों के लिए गायत्री महाशक्ति की साधना प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष, कामधेनु एवं पारस की तरह है, जिसका अवलंबन हर दृष्टि से हितकर रहता है। ❑

पूर्व दिशा में उषा की लालिमा दिखाई देने लगी। अंधकार के विदा होने का समय निकट आ गया। भगवान भास्कर भी अपने रथ पर सवार होकर गगन पथ पर आगे बढ़ने लगे। उन्होंने देखा कि अंधकार से लड़ता एक दीपक एकाकी खड़ा है। दीपक की लौ ने अपना मस्तक उठाकर सूर्य को प्रणाम किया। सूर्यदेव को यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि दीपक ने अपना कर्त्तव्य अच्छी प्रकार निभाया है। उन्होंने इस हेतु दीपक की प्रशंसा की।

दीपक सहज भाव से बोला—"सूर्यदेव! संसार में अपने कर्त्तव्यपालन से बढ़कर कोई अन्य पुरस्कार हो सकता है—मैं नहीं जानता। मैंने तो आपके द्वारा दिए गए उत्तरदायित्वों का निर्वाह किया है, इसमें प्रशंसा की बात ही क्या?" सूर्यदेव संतुष्ट होकर आगे बढ़ गए। दिए गए कर्त्तव्य की पूर्ति महानता का प्रतीक होती है।

आदिशक्ति की साधना का पर्व

सनातन संस्कृति के संदर्भ में नवरात्र को आदिशक्ति की साधना का सर्वश्रेष्ठ कालखंड माना जाता है। देवीसूक्त में आदिशक्ति नवदुर्गा के नौ रूपों की उपासना का विशद वर्णन मिलता है। आदिशक्ति का पहला ईश्वरीय स्वरूप **शैलपुत्री** है।

कर्मकांड के दृष्टिकोण से देवी शैलपुत्री को कैलास शिखर की पुत्री के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, किंतु आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में योग-साधना के माध्यम से अपनी चैतन्य ऊर्जा यानी जीवनीशक्ति को अपनी गहन एवं सकारात्मक भावनाओं से तादात्म्य स्थापित करते हुए उत्कृष्टतम आकार देना और साधना के दौरान दिव्यता की अनुभूति करना शैलपुत्री की यथार्थपूर्ण आराधना है।

नवरात्र के दूसरे दिन **ब्रह्मचारिणी** की पूजा का विधान है। ब्रह्मचारिणी का अर्थ है विराट ब्रह्मांड में विचरण करने वाली शक्ति। इस रूप की उपासना द्वारा हम आदिशक्ति की अनंत व सर्वव्यापक ऊर्जा का आवाहन करते हैं।

तीसरे दिन **चंद्रघंटा** की आराधना का विधान है। चंद्रमा हमारी मन:स्थिति को प्रभावित करने वाला नक्षत्र है। वास्तव में चंद्रघंटा रूप की भक्ति मन को सकारात्मक ऊर्जा से भरने का सुअवसर प्रदान करती है। साधना करते-करते जब हमारा मन एकाग्र होकर ईश्वरीय शक्ति के प्रति समर्पित हो जाता है, तब हमारे अंत:करण में स्वाभाविक रूप से दिव्य जीवनीशक्ति का उदय होता है।

आदिशक्ति का चौथा रूप है—**कूष्मांडा**। कूष्मांडा का शाब्दिक अर्थ है—गोलाकार कुम्हड़ा यानी उस प्राणिक ऊर्जा को जाग्रत करने की साधना, जो जाग्रत होने पर एक वर्तुलाकार अर्थात कुम्हड़े के समान एक गोलाकार रूप धारण कर लेती है।

नवरात्र की विशेष साधना के दौरान जब साधक पद्मासन में बैठकर समग्रता के साथ ध्यानावस्था में उतरता है तो आध्यात्मिक ऊर्जा का एक सघन वर्तुल बनकर उसके संपूर्ण अस्तित्व को बाह्य एवं आंतरिक नकारात्मकता से मुक्त कर देता है।

नवरात्र के पाँचवें दिन **स्कंदमाता** की पूजा होती है। नवदुर्गा के इस रूप की आराधना अपनी बुद्धिमत्ता को व्यवहारकुशल बनाने व इच्छाशक्ति को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए की जाती है। स्कंद तत्त्व हमारे व्यावहारिक ज्ञान को विवेक के साथ क्रियात्मक रूप देता है। अगले छठे दिन माँ **कात्यायनी** की पूजा होती है, आदिशक्ति का यह रूप सूक्ष्मजगत् में व्याप्त तमाम नकारात्मकता को समाप्त कर सकारात्मकता का संचार करता है।

नवरात्र के सातवें दिन आदिशक्ति के सप्तम रूप **कालरात्रि** की उपासना होती है। देवी का यह रूप ज्ञान और वैराग्य के माध्यम से जीवन को सार्थकता प्रदान करता है।

अपनी ओर से कुछ कहना नहीं, कुछ चाहना नहीं, किंतु परमात्मा का जो आदेश हो, उसे प्राणपण से पालन करना। इसी का नाम समर्पण है। —*परमपूज्य गुरुदेव*

आठवें दिन **महागौरी** की पूजा का विधान है। नवदुर्गा का यह रूप अलौकिक सौंदर्य से भरपूर है। निरंतर साधना के पथ पर अग्रसर होते हुए साधक को अपने स्वरूप में एक देदीप्यमान रूपांतरण की अनुभूति होने लगती है।

नौवें दिन **सिद्धिदात्री** की आराधना होती है, आदिशक्ति के इस रूप की साधना कार्यक्षमता की वृद्धि के साथ-साथ व्यक्तित्व विकास की यात्रा को पूर्णता प्रदान करती है।

नवरात्र पर्व व्यक्ति को यम, नियम, व्रत-उपवास के द्वारा उसकी सूक्ष्म और स्थूल कर्मेंद्रियों की शुचिता, आत्मानुशासन एवं परिशोधन के लिए विशेष अवसर प्रदान करने का पर्व है।

चैत्र नवरात्र के समापन पर रामनवमी का पर्व मद, मत्सर और आंतरिक विचारों पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा देता है। आश्विन नवरात्र के समापन पर विजया दशमी का पर्व मनाया जाता है। ❑

जीवन का सौंदर्य है वाणी

वाणी जीवन का स्वर, सौंदर्य व संगीत है। यदि इसमें हमारे व्यक्तित्व की मधुरता और उसकी साधना का सम्मिश्रण हो जाए, तो जीवन अपने आप ही सुगंधित व सुरभित होने लगता है। वाणी की देवी माता सरस्वती हैं। ऐसा कहते हैं कि पहले इस सृष्टि में सर्वत्र मौन छाया हुआ था, फिर माता सरस्वती की कृपा से सृष्टि में स्वर का संचार हुआ, जिससे विभिन्न तरह का मधुर संगीत इस सृष्टि में गूँजने लगा। इस स्वर के संचार से ही सृष्टि के जीवों में वाक् क्षमता विकसित हुई और वे अपनी मनोअभिव्यक्ति, भावाभिव्यक्ति अपने-अपने स्वरों के माध्यम से करने लगे।

वाणी वह है, जो किसी के भी मुख से स्वर रूप में बाहर निकलती है और उसके मन के भाव को उसके मन व बुद्धि के अनुसार अभिव्यक्त करती है। मनुष्य की वाणी अन्य जीवों की वाणी की तुलना में विशिष्ट होती है; क्योंकि उसमें अभिव्यक्ति (मनोअभिव्यक्ति, भावाभिव्यक्ति, वैचारिक अभिव्यक्ति, काल्पनिक अभिव्यक्ति, अनुभवों की अभिव्यक्ति आदि) के विभिन्न आयाम (जैसे—बोल करके, गा करके, कविता करके, अभिनय करके आदि) होते हैं।

मनुष्य अपनी वाणी को भाषा व बोली का रूप दे देते हैं और फिर उसके द्वारा भाँति-भाँति से अपनी भावाभिव्यक्ति करते हैं; जबकि अन्य जीव अपनी वाणी को भाषा या बोली का रूप नहीं दे सकते और यही कारण है कि उनकी एक ही तरह की बोली या भाषा होती है; जैसे—कुत्तों की बोलने की भाषा भौंकने के रूप में होती है, घोड़े की बोलने की अभिव्यक्ति हिनहिनाने के रूप में होती है, बिल्ली म्याँऊ-म्याँऊ करके ही बोलती है, गाय व भैंसों का स्वर 'अम्मा' के रूप में होता है। हाथी के बोलने का स्वर चिंघाड़ने के रूप में होता है; पक्षियों के बोलने का स्वर चहचहाने के रूप में होता है; कबूतर गुटरगू करके बोलते हैं; कौआ काँव-काँव करके बोलता है; तोते सीटी बजाते हुए बोलते हैं; कोयल कुहू-कुहू करके बोलती है।

ये सभी पशु-पक्षी चाह करके भी अपना स्वर नहीं बदल सकते; जबकि मनुष्य इन सबकी भाषा को बोलने का प्रयास कर सकता है, उनकी नकल कर सकता है; लेकिन उनकी इस बोली को समझ नहीं सकता कि वे अपनी बोली में क्या कह रहे हैं; क्योंकि उनकी बोली का स्वर एक ही है। उनमें कोई भिन्नता नहीं है, हर बार वो एक ही स्वर को बार-बार बोलते हैं, लेकिन वे इसी एक स्वर से अपने जैसे लोगों से बातें करते हैं, जिसे उनकी जाति के लोग उनको समझ जाते हैं।

मनुष्य का छोटा बच्चा भी जब बोलना नहीं जानता, स्वरों को नहीं पहचानता तो वह भी केवल एक ही तरह की आवाज निकालता है, उसी आवाज में वह हँसता है, रोता है, चीखता है, चिल्लाता है, गुस्सा होता है और अपनी विभिन्न तरह की भावनाओं को वह अभिव्यक्त करता है, उसके एक ही तरह के स्वर को भले ही कोई अन्य न समझ पाए, लेकिन उसकी माँ उसके इशारे को भली प्रकार समझ जाती है कि कब उसे भूख लगी है, कब उसे आराम मिल रहा है, कब वह खुश है और कब वह दरद-कष्ट व पीड़ा में है।

यदि ध्यान से देखा जाए तो मनुष्य के शिशु व अन्य स्वरधारी पशु-पक्षियों का एक वही स्वर भिन्न-भिन्न स्थितियों में अलग-अलग ढंग से निकलता है—जब वे परेशानी व कष्ट में होते हैं, तो उनका वही स्वर तेज हो जाता है, अपना दरद प्रकट करता है, जब वे खुशी में होते हैं, तो उनका वही स्वर मृदु हो जाता है और अपनी खुशी प्रकट करता है। जब वे दु:खी होते हैं, तो उनका वही स्वर रोने के समान होता है। इस तरह मनुष्य व अन्य पशु-पक्षी अपना दु:ख, दरद, कष्ट व प्रसन्नता एक ही स्वर से, परंतु विभिन्न तरह से प्रकट करते हैं।

मनुष्य जब बड़ा होने लगता है तो वह धीरे-धीरे बोलना सीखने लगता है; क्योंकि उसके कंठ में स्वर होते हैं और उसके स्वर मनुष्य जाति की विभिन्न तरह की बोलियों को दोहराने में व बोलने में प्रयुक्त होते हैं। बोलियों को केवल दोहराने से उन्हें नहीं समझा जा सकता, बल्कि उन्हें

समझने के लिए इन बोलियों को बोलने व समझने का अभ्यास करना पड़ता है।

पूरे विश्व में कई तरह की बोलियाँ बोली जाती हैं। हर देश की अपनी एक अलग बोली है। केवल भारत देश में ही कई तरह की भाषाएँ बोली जाती हैं। यहाँ हर क्षेत्र विशेष की एक अलग बोली है, एक अलग भाषा है, जिसे उस क्षेत्र विशेष के लोग बोलना पसंद करते हैं। यहाँ के गाँवों की अलग भाषा है, शहरों की एक अलग भाषा है। भारतवर्ष की एक समान भाषा हिंदी मानी जाती है। हिंदीभाषी लोगों की बहुलता के कारण, यहाँ की प्राचीन हिंदू संस्कृति व आर्य सभ्यता के कारण ही पहले भारत को हिंदुस्तान कहा जाता था।

वाणी केवल बोलने के कार्य में ही प्रयुक्त नहीं की जाती, बल्कि वाणी संकल्प का रूप भी होती है। जब किसी की वाणी सिद्ध हो जाती है, तो वह व्यक्ति जो भी कहता है, वह सृष्टि में घटित हो जाता है। जब वाणी शुद्ध व पवित्र हो जाती है, तो उसका प्रभाव अमिट होता है, वह प्रामाणिक होती है और वह वातावरण को भी दिव्य बना देती है, लेकिन वही वाणी जब दूषित हो जाती है, अशुद्ध व अपवित्र हो जाती है, तो ऐसी वाणी अप्रभावी व निरर्थक होती है और वातावरण को दूषित करने वाली, अविश्वसनीय होती है और अप्रामाणिक होती है।

वाणी के माध्यम से ही मनुष्य अपने वचन बोलता है, संवाद करता है और उसके द्वारा कहे गए वचनों व संवादों की महत्ता होती है। वाणी तभी प्रामाणिक कही जाती है, जब वचनों के अनुसार मनुष्य प्राणपण से कार्य करता है—जो कहता है, वह करता है। वही वाणी तब अप्रामाणिक कही जाती है, जब मनुष्य अपने वचनों के अनुसार कार्य नहीं करता, यानी जो कहता है, उसके विपरीत कार्य करता है, अपनी वाणी से झूठ बोलता है, लोगों को धोखा देता है, विवाद करता है और गाली-गलौज व दुर्वचन कहता है।

मनुष्य की वाणी की अभिव्यक्ति एक अद्‌भुत कला है और यह कला सिर्फ मनुष्यों को ही प्राप्त है। सृष्टि में अनगिनत ऐसे प्राणी हैं, जिनके पास बोलने की क्षमता नहीं है और जिन प्राणियों को बोलने की क्षमता प्राप्त है, उनके स्वर की एक निर्धारित सीमा है, लेकिन मनुष्य का स्वर, अन्य से भिन्न है, उसके विविध आयाम हैं और यही कारण है कि मनुष्य की वाणी कुछ विशेष है।

अगर वाणी की बात की जाए तो वाणी से हुए संवाद व विवाद समस्याएँ पैदा कर सकते हैं और उनका समाधान भी कर सकते हैं। सवाल केवल उसके सदुपयोग व दुरुपयोग का है। आदर्श मनुष्य वाणी का सदुपयोग कर लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं, तो वहीं दुष्ट मनुष्य वाणी का दुरुपयोग कर समस्याएँ पैदा करते हैं और लोगों को दिग्भ्रमित करते हैं। सम्यक वाणी के चार सूत्र कहे गए हैं—मितभाषिता, मृदुभाषिता, सत्यभाषिता और विचारभाषिता। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव का कथन है कि समझदार वे हैं, जो बोलने से पहले सोचते हैं और मूर्ख वे हैं, जो बोलने के बाद सोचते हैं।

अध्यात्म साधना में वाणी का संयम (वाक्‌संयम) बहुत जरूरी है। हमारे समाज में वाचाल लोगों को गंभीरता से नहीं लिया जाता। इसलिए उतना ही बोलना चाहिए, जितना बोलना आवश्यक हो। उचित अवसर पर शालीनता के साथ कही गई बात प्रभावी होती है। आचार्य शंकर का कहना था कि आप प्रखर वक्ता हो सकते हैं और शास्त्र की चमत्कारिक व्याख्या करने में भी दक्ष हो सकते हैं, परंतु आप की यह विद्वत्ता केवल भोग के लिए है, मोक्ष के लिए नहीं। दुनिया में ऐसे बहुत से लोग हैं, जो कि बात करने में माहिर होते हैं, परंतु सफल वे ही होते हैं जो वाणी पर नियंत्रण करना जानते हैं। क्रोध या कलह के समय मौन हो जाने से भी कई तरह की समस्याओं पर विराम लग जाता है।

संस्कृत में एक नीति वचन है—वाचालता पतन का कारण है और मौन उत्थान का। मुखर होने से नूपुर को पैर में जगह मिलती है और मौन होने के कारण हार को गले में पहना जाता है। मृदुभाषी सबको प्रिय लगता है। मधुर वाणी से शत्रु को भी मित्र बनाया जा सकता है। कई तरह के लोग काम, क्रोध, लोभ और भयवश झूठ बोलकर अपना विश्वास खो देते हैं। तभी तो संत कबीरदास जी ने कहा है—**साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप**। झूठ के पाँव नहीं होते। वह भी सत्य की बैसाखी पर चलता है। मिलावटखोर भी अपनी दुकान के सामने यह लिखवाता है कि यहाँ शुद्ध सामान मिलता है। बोलने से पहले यह विचार कर लेना चाहिए कि क्या वह अपने मौन से श्रेष्ठ होगा? वस्तुतः सारे विवादों की जड़ तीखे वचन ही होते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि हम तौलकर बोलें, मीठा बोलें, सत्य बोलें और सोच-समझकर बोलें। ❑

ईश्वरतत्त्व का जागरण

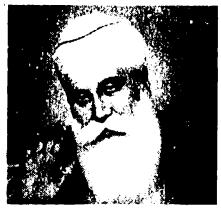

गुरु नानकदेव ईश्वरप्रदत्त दिव्य ज्ञान से भरे हुए थे। वे जहाँ भी जाते, वहाँ उस ज्ञान-अमृत से लोगों की आत्मा को तृप्त किया करते थे। उसी क्रम में वे एक स्थान पर जनमानस को संबोधित करते हुए कह रहे थे कि ईश्वर केवल एक है, जो तुम्हारी आत्मा के अंदर विराजमान है। उसी का नाम लेना हरेक व्यक्ति के लिए जरूरी है, इसी से तुम्हारा कल्याण होगा। किसी भी प्राणी का हृदय मत दु:खाओ। सदा बुराइयों से दूर रहो। शराब एवं अन्य नशों से सदा दूर रहो। गुरुजी ने जनमानस को समझाते हुए कहा—इस शराब से क्या लाभ है ? असली नशा तो ईश्वरभक्ति में है।

नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन-रात।

अर्थात ईश्वर का नाम ही एक ऐसा नशा है, जो दिन-रात चढ़ा रहता है। यह नशा कभी भी समाप्त नहीं होता है।

ईश्वर महान हैं, अस्तु ईश्वर की उपासना से व्यक्ति में भी महानता विकसित होने लगती है, प्रकट होने लगती है। ईश्वर दिव्य हैं, इसलिए ईश्वर की उपासना से व्यक्ति में दिव्यता प्रकट होने लगती है। ईश्वर ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिए ईश्वर की उपासना से व्यक्ति में ज्ञान प्रकट होने लगता है। ईश्वर सत्यस्वरूप हैं, ईश्वर प्रेमरूप हैं, इसलिए ईश्वर की उपासना से व्यक्ति में सत्य प्रकट होने लगता है, प्रेम प्रकट होने लगता है।

जैसे समुद्र से जुड़कर नदियाँ समुद्र बन जाती हैं, वैसे ही ईश्वर से जुड़ते ही व्यक्ति की क्षुद्रता, अहंता आदि निम्नगामी वृत्तियाँ मिटने लगती हैं और उसमें सत्य, प्रेम, ज्ञान आदि दिव्य गुण प्रकट होने लगते हैं, जिनसे वह महानता के मार्ग पर, सत्य के मार्ग पर चल पड़ता है और स्वयं के साथ-साथ वह दूसरों को भी आनंद प्रदान करता है।

संत नानकदेव बोले—"ईश्वर की उपासना से व्यक्ति की क्षुद्रता, संकीर्णता आदि महानता में तब्दील हो जाते हैं। इसलिए तुम सभी बनावटी नशे को छोड़कर ईश्वर नाम का अमृत पिओ, जो तुम्हें भी अमर कर देगा और लोगों का जीवन भी सुधारेगा। ईश्वर की उपासना से ही उपासक में ईश्वरतत्त्व का जागरण होता है, इसलिए नित्य ईश्वर की उपासना करो।"

गुरु नानकदेव बोले—"मैं जो कहना चाहता हूँ, वह सीधी-सी बात है। यह संसार है और इस सारे संसार का एक ही स्वामी है और वह ईश्वर है। ईश्वर सर्वव्यापी और सर्वज्ञ है। जो वास्तव में बुराइयों से दूर रहता है, वही सच्चा ईश्वरभक्त है और ईश्वर भी उसी से प्यार करता है। दुनिया में एक ही धर्म है और वह है मानवता का धर्म। इससे बड़ा धर्म कोई नहीं; क्योंकि पापी का कोई धर्म नहीं होता।"

गुरु नानकदेव बोले—"धर्मी स्वयं धर्म का पुजारी है। जो धर्म से प्यार करता है, जो ईश्वर से प्यार करता है—उसमें द्वेष-भाव या अन्य कोई बुराई नहीं होती। वह सबको भगवद्दृष्टि से देखता है, वह किसी को ऊँच-नीच की दृष्टि से नहीं देखता। उसे माया भी नहीं मोहती और वह सदा संतुष्ट, प्रसन्न व आनंदित रहता है। वह आशा-तृष्णा के बीच रहते हुए भी उनसे निर्लिप्त रहता है। यह सुनिश्चित है कि हर बुरा आदमी एक दिन गिरेगा और अपने बुरे कर्मों की सजा पाएगा। उसी प्रकार हर अच्छा आदमी एक दिन अपने अच्छे कर्मों का सुफल प्राप्त करके रहता है, इसलिए हमें सदा अच्छे कर्म करने चाहिए।"

वे आगे बोले—"आत्मा अमर है। इस आत्मा को ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान के बिना व्यक्ति अंधा है। ज्ञान ही गंगा है, ज्ञान ही स्वर्ग है। अज्ञानता नरक है। इस नरक से बचना है तो ज्ञान प्राप्त करो और सदा अच्छे कर्म करो। तुम्हारी आत्मा में ही ज्ञान भरा पड़ा है, ईश्वर की उपासना से ही आत्मा में सन्निहित ज्ञान प्रकट होंगे और तुम्हारी आत्मा प्रकाशित होगी, साथ ही आत्मा पर छाया अंधकार मिट जाएगा।"

गुरु नानकदेव ने फिर कहा—"जो अज्ञानी लोग हैं उनकी आत्मा अभी प्रकाश से खाली है और जब तक उनकी आत्मा में ज्ञान का प्रकाश नहीं होता, तब तक वे अँधेरे में ठोकरें खाते रहेंगे और बुरे कर्मों में लिप्त रहेंगे। अब तुम सब बुरे

कर्मों को छोड़कर ईश्वरभक्ति में स्वयं लग जाओ और अपने साथियों को भी अच्छे मार्ग पर चलाओ। ईश्वर का ध्यान करो। अपनी नेक कमाई से जीवनयापन करो और बुराई से दूर रहो।'' इस प्रकार गुरु नानकदेव की अमृतवाणी से लोग बहुत प्रभावित हुए और उस दिन से ईश्वर के मार्ग पर चलते हुए आनंदपूर्ण जीवन जीने लगे। ❑

महर्षि रैक्व बैलगाड़ी चलाकर जीविका उपार्जन करते थे। उस राज्य के राजा जानश्रुति को ज्ञात हुआ कि महर्षि रैक्व ब्रह्मज्ञानी हैं। उनसे ब्रह्मविद्या सीखने के उद्देश्य से राजा जानश्रुति राजपरिवार को साथ लेकर महर्षि से मिलने उनकी झोंपड़ी पर पहुँचे। महर्षि अत्यंत सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। राजा जानश्रुति ने महर्षि को प्रणाम किया और उनसे निवेदन किया—''मैं ब्रह्मविद्या सीखने का इच्छुक हूँ, यदि आप मेरे गुरु बन सकें तो मैं स्वयं को कृतार्थ समझूँगा।'' महर्षि रैक्व निस्पृह भाव से जहाँ बैठे थे, वहीं बैठे रहे। राजा के कई बार अनुरोध करने पर जब महर्षि ने कोई उत्तर नहीं दिया तो राजा को लगा कि संभवतया महर्षि किसी प्रकार की दक्षिणा या उपहार के आकांक्षी हैं।

ऐसा सोचते हुए राजा जानश्रुति महर्षि से बोले—''ऋषिवर! मैं आपके सम्मुख हजारों गायें एवं बेशकीमती रत्न, जवाहरात भेंट करना चाहता हूँ। इन्हें स्वीकार कर मुझे ब्रह्मविद्या का उपदेश देने का अनुग्रह करें।'' यह सुनकर महर्षि रैक्व बोले—''पुत्र! इस ज्ञान की प्राप्ति में यही तो बाधा है। राजपद का अहंकार तुम्हें ऐसा समझने पर विवश करता है कि तुम्हें भ्रांति हो गई है कि ब्रह्मविद्या भी कोई क्रय-विक्रय की वस्तु है, जिसे निर्धारित मूल्य देकर खरीदा जा सकता है। ब्रह्मविद्या तो ब्रह्म को जानने की विद्या है, जो समस्त आकर्षणों से परे है। यदि इसको भी खरीदा जा सके तो इसमें और बाजार में बिकते सामान में क्या अंतर है?''

राजा जानश्रुति का अहंकार चूर हो गया, उन्हें भान हुआ कि अध्यात्म के पथ पर चलने में अहंकार ही तो बाधा है। यदि यह समाप्त हो जाए, कामनाएँ शून्य हो जाएँ तो प्रभु की भक्ति से उन्हें कौन रोक सकता है। इस भावना के साथ जब वे महर्षि के समक्ष पुनः प्रस्तुत हुए तो वे सच्चे ज्ञान के अधिकारी बने।

जिसकी जैसी श्रद्धा, वैसा उसका जीवन

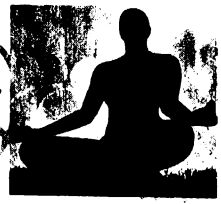

व्यक्ति की पहचान उसकी भावनाओं से होती है। इनके सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक होने से जीवन भी वैसा ही हो जाता है। डाकू है अथवा सामान्य जन अथवा साधुपुरुष, व्यक्तियों के व्यक्तित्व का भेद दरअसल उनकी भावनाओं का ही भेद होता है। यदि भावनाओं में परिवर्तन हो सके, तो व्यक्तित्व भी परिवर्तित हो सकते हैं। इस संभावना का आकलन करके ही वैदिक ऋषि प्रसिद्ध मंत्र—**'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** का उपदेश सभी को देते हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान के मनीषी हालाँकि अब तक व्यक्तित्व के परिवर्तन को असंभव मानते रहे हैं, परंतु नए तथ्यों ने उनके विचारों एवं मान्यताओं में परिवर्तन करना आरंभ किया है। अब वे भी कहने लगे हैं कि यह परिवर्तन कठिन है, किंतु असाध्य नहीं। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने त्रिविध श्रद्धा के अनुरूप तीन तरह के व्यक्तित्व की बात कही है।

श्रीमद्भगवद्गीता के 17वें अध्याय के दूसरे श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥

अर्थात हर व्यक्ति के स्वभाव के अनुरूप ही उसकी श्रद्धा होती है। चूँकि व्यक्ति का स्वभाव तीन तरह का होता है—सात्त्विक, राजसिक व तामसिक; अत: उसकी श्रद्धा भी तीन तरह की होती है—सात्त्विक श्रद्धा, राजसिक श्रद्धा व तामसिक श्रद्धा। अब इन तीनों को समझना जरूरी है।

तामसिक श्रद्धा क्या है? यह हमारे जीवन में कैसे कार्य करती है? तमस् से भरे हुए व्यक्ति की श्रद्धा कैसी होगी? तम यानी प्रकाश का अभाव, जड़ता, विचारहीनता, कर्महीनता। ऐसे व्यक्ति संवेदनाशून्य, करुणाशून्य होते हैं और यही कारण है कि तामसी व्यक्ति हिंसा व दुष्कर्म करते हैं और ये दूसरों का अधिकार छीनने वाले होते हैं; क्योंकि इन्हें दूसरों के दरद का अनुभव नहीं हो पाता।

चूँकि तामसी व्यक्तियों की स्वभाव से जड़ प्रकृति होती है; अत: तमस् से भरे हुए व्यक्ति की श्रद्धा ऐसी होगी, जिसमें वह कुछ करना नहीं चाहेगा, बस, वह भली भाँति आराम करना चाहेगा। इसलिए यदि वह प्रार्थना भी करेगा, तो वह इसलिए करेगा, ताकि वह यह प्रार्थना कर सके कि उसे कुछ काम न करना पड़े। वह भगवान पर, परमात्मा पर यदि भरोसा भी करेगा तो इसलिए करेगा, ताकि वह खुद काम करने से बच जाए।

उसकी कही जाने वाली बातों से यह स्पष्ट होगा कि करने वाला तो बस, भगवान है। सब कुछ करने वाला, देने वाला तो भगवान ही है। फिर कुछ करने से क्या होगा? देने से क्या होगा? वह कहेगा कि हम तो भाग्य में अपनी आस्था रखते हैं, हमारे साथ जो होना होगा, हो जाएगा।

वह कहेगा कि जो हमें मिलने वाला होगा, वह हमें मिल जाएगा। फिर ज्यादा मेहनत करने की, परेशान होने की क्या जरूरत है। वह कहेगा कि इस दुनिया में भगवान की मरजी के बिना तो एक पत्ता भी नहीं हिलता, वह तो पशु-पक्षियों को पालता है, तो हमें क्यों न पालेगा? इस तरह की उसकी बातें होती हैं, जिसमें वह भगवान पर ही पूरी तरह से स्वयं को निर्भर दिखाता है।

एक भक्त भी इस तरह की बातें कर सकता है और एक महाआलसी व्यक्ति भी इस तरह की बातें कर सकता है, लेकिन दोनों के कृत्यों में, कार्यों में फरक होता है। एक भक्त की भावनाएँ शिखर पर होती हैं और एक आलसी व्यक्ति की भावनाएँ तलातल पर होती हैं। एक भक्त सतत सक्रिय व होशपूर्ण होता है; जबकि एक आलसी निष्क्रिय व बेहोशी में होता है। एक भक्त का भगवान पर पूरा भरोसा होता है और एक आलसी व्यक्ति भगवान पर अपनी निर्भरता दरसाता है।

तमस् से भरा हुआ आलसी व्यक्ति बड़ी शान से बातें करता है, लेकिन अपनी बातों में वह अपने अंदर के तमस् को छिपा रहा होता है। उसके कहने का तात्पर्य यह नहीं होता कि परमात्मा सब करता है, बल्कि वह यह कह रहा

होता है कि हम कुछ करना नहीं चाहते। इस तरह परमात्मा की ओट में वह अपने तमस् को छिपा रहा होता है।

इस दुनिया में कई ऐसे लोग हैं, जिनकी श्रद्धा तमस् की है, जो कुछ करना नहीं चाहते और उनके जीवन में भी कुछ खास घटित नहीं होता। उनका जीवन उदास, मलिन व थका हुआ-सा दिखाई पड़ता है। फिर भी वे बातें बड़ी शान की करते हैं कि उसकी (भगवान की) मरजी के बिना क्या होगा?

वो कहते हैं कि हमने तो सब कुछ उसी पर छोड़ दिया है। जबकि छोड़ा उन्होंने कुछ भी नहीं है, वे कुछ कर नहीं सकते, कुछ करने की हिम्मत उनमें नहीं है, कार्य करने की उनमें ऊर्जा नहीं है। तमस् को ही उन्होंने अपने जीवन का राग बना लिया है, रस बना लिया है, इसलिए वे बड़ी ऊँची-ऊँची बातें करते हैं।

तामसी व्यक्ति के सामने अगर कोई व्यक्ति मेहनत करता है, धन कमाता है, तो वह कहता है कि क्या करोगे इतनी मेहनत करके, इतना धन कमा करके। अगर भगवान की मरजी हो, तो लँगड़े पहाड़ चढ़ जाते हैं, अंधे पढ़ने लगते हैं, बहरे सुनने लगते हैं और उसकी मरजी न हो, तो दौड़ते रहो, क्या होगा? इस तरह की बातें करके वह अपने आप को समझा लेता है।

वह कहता है कि मैं संतुष्ट हूँ। भले ही उसके भीतर वासनाएँ भड़क रही हों, भले ही उसके भीतर सब तरह की महत्त्वाकांक्षाएँ उठती हों, सब तरह के सपने उसके मन में पलते हों, लेकिन उन सपनों के लिए, उन महत्त्वाकांक्षाओं के लिए चूँकि उसे मेहनत करनी पड़ेगी और मेहनत करने, कुछ करने की उसके अंदर हिम्मत नहीं होती—इसलिए वह कहता है कि मैं संतुष्ट हूँ, भगवान ने जो दे दिया है, वह काफी है, पर्याप्त है, अब मैं ज्यादा की माँग नहीं करता और इस तरह वह संसार में स्वयं ज्ञानी होने का ढोंग करता है।

ऐसा व्यक्ति भले ही कितना भी ज्ञानी होने का दिखावा करे, लेकिन उसकी आँखों में वह उज्ज्वल प्रकाश नहीं दिखता है, जो ज्ञानी व्यक्ति में होना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों की आँखों में धुँध दिखाई देती है और इनके पास बैठकर नींद व जँभाई आने लगती हैं। ऐसे लोगों के पास बैठकर व्यक्ति थका हुआ अनुभव करता है; क्योंकि तामसी व्यक्ति दूसरों की ऊर्जा को शोषित करता है। इसलिए जब भी कोई तामसी व्यक्ति किसी से मिलता है, वह दूसरों की ऊर्जा सोख लेता है और दूसरा व्यक्ति ऐसा महसूस करता है, जैसे वह ऊर्जाविहीन हुआ हो, जैसे उसका कुछ खो गया हो।

जबकि राजसी व्यक्ति दूसरों को अपनी शक्ति देता है, अपनी ऊर्जा देता है, क्योंकि वह ऊर्जा से इतना भरा होता है कि दूसरों को ऊर्जा देने में भी उसे कोई दिक्कत महसूस नहीं होती, बल्कि खुशी होती है। ऐसे व्यक्ति के पास जाने पर ऐसा लगता है मानो अंदर महत्त्वाकांक्षाओं के दिए जलने लगे हों।

राजसी व्यक्ति अपनी बातों से दूसरों को कुछ-न-कुछ करने की प्रेरणा देता है, कुछ-न-कुछ ऐसा कह देता है, जिसके कारण फिर व्यक्ति शांत नहीं बैठ पाता, बल्कि कुछ करने की कोशिश करता है; क्योंकि रज यानी प्रकाश की कमी, लेकिन सक्रियता व आसक्ति की वृद्धि। अतः राजसी व्यक्तियों में आसक्ति, लोभ, लालच, स्वार्थ की अति, इच्छा, आकांक्षा व वासनाओं की अति होती है।

इस तरह तामसी व्यक्ति जहाँ दूसरों को कुछ न करने की प्रेरणा देता है तो वहीं राजसी व्यक्ति दूसरों को कुछ-न-कुछ कर गुजरने के लिए प्रेरित करता है। राजसी व्यक्ति द्वारा दी गई ऊर्जा सकारात्मक व नकारात्मक, दोनों तरह की हो सकती है; क्योंकि सकारात्मक राजसी ऊर्जा के कारण जहाँ व्यक्ति अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित होता है, वहीं नकारात्मक राजसी ऊर्जा के कारण व्यक्ति उपद्रव करने लगता है, दूसरों का नुकसान करने लगता है और अपनी भी हानि कर लेता है।

इस तरह तामसी व्यक्ति दूसरों की ऊर्जा चूसता है; क्योंकि वह आलस्य, तमस् से भरा हुआ होता है। इसलिए उसके पास जाने पर वह शोषण करता है, वह दूसरों के प्रकाश को सोख लेता है, उसके पास से लौटने पर व्यक्ति थका हुआ, उदास व हारा हुआ महसूस करता है और उसे फिर सो जाने का मन करता है। जबकि राजसी व्यक्ति दूसरों को भड़काता है, उन्हें त्वरा से, बुखार से भरता है कि कुछ कर गुजरो।

जिस तरह बुखार होने पर व्यक्ति चैन से सो नहीं पाता, उसी तरह रजस् की ऊर्जा से व्यक्ति शांति से बैठ नहीं पाता, कुछ-न-कुछ करता रहता है। उसकी बातें सुनकर, उसके शब्द सुनकर दुनिया में उपद्रव होते हैं—या तो क्रांतियाँ

होती हैं या दंगे होते हैं, ऐसे लोगों की बातें सुनकर लोग अपने ऊपर से काबू खो देते हैं और उनकी हाँ-में-हाँ मिलाकर कार्य करने में जुट जाते हैं।

इसके विपरीत सात्त्विक व्यक्ति के उपस्थित रहने पर वह कुछ लेता नहीं, कुछ देता भी नहीं, बल्कि उसकी उपस्थिति के कारण दूसरों के अंदर एक रूपांतरण घटित होने लगता है। उस परिवर्तन को, उस घटना को, उस बदलाव को दूसरा व्यक्ति महसूस करता है।

सात्त्विक व्यक्ति की मौजूदगी में एक शांति प्रवाहित होती है, जो दूसरों के मन को भी शांत करती है। जिसके कारण अंदर के द्वंद्व क्षीण होने लगते हैं, शांत होने लगते हैं; क्योंकि सत्त्व यानी प्रकाश, शुद्ध, श्रेष्ठ, विचारशील व अनासक्त। अत: सात्त्विक व्यक्ति अनासक्त होता है और वह सत्कर्म, सद्भाव व सद्विचार में तल्लीन रहता है; जैसे—योगी, साधु व साधक।

इसलिए सात्त्विक व्यक्ति की मौजूदगी के प्रकाश में व्यक्ति अपने भीतर की अंतश्चेतना से जुड़ने लगता है। सात्त्विक व्यक्ति एक सामंजस्य देता है, कुछ देता नहीं, कुछ लेता भी नहीं। वह होश देता है, वह व्यक्ति को उसकी वास्तविकता से परिचय कराता है, ताकि वह खुद से भागे नहीं, बल्कि खुद से जुड़े, ताकि व्यक्ति दूसरों की तरह बनने के बजाय खुद की तरह बने, ताकि व्यक्ति दूसरों के पीछे भागने के बजाय खुद को समझे। खुद ही अपने को तराशे और कुछ नया बने, न कि दूसरों की तरह बनने का प्रयास करे।

इस तरह तामसी व्यक्ति की श्रद्धा आलस्य पर टिकी होती है, अत: वो सभी कार्य जिनको करने के बाद व्यक्ति कुछ करने की स्थिति में नहीं रहता—ऐसे कार्य तामसी व्यक्ति को प्रिय होते हैं। राजसी व्यक्ति की श्रद्धा रजस् पर केंद्रित होती है, अत: वो सभी कार्य जिनको करने से व्यक्ति को शांति व चैन नहीं मिलता, ऐसे कार्य राजसी व्यक्ति को प्रिय होते हैं।

इसके विपरीत सात्त्विक व्यक्ति की श्रद्धा उन कार्यों पर टिकी होगी, जिन्हें करने से मन को शांति मिलती है, संतोष मिलता है। वह कोई कार्य इसलिए करता है, क्योंकि उसकी जरूरत होती है। अगर जरूरत नहीं होती, तो वह शांत बैठता है और अपनी शांति को वह कभी नहीं खोता—न तो कार्य के दौरान और न ही विश्रांति के दौरान।

सात्त्विक व्यक्ति सदा अपने सत्त्व में रहता है, अपनी शांति में रहता है, अपने प्रकाश में रहता है। कोई भी कर्म उसकी शांति को, उसके प्रकाश को आघात नहीं पहुँचा पाता। यदि कहीं आग लगी हो, तो वह उसे बुझाएगा जरूर, चुप नहीं बैठेगा, लेकिन उसके भीतर बाहर लगी आग की खबर नहीं पहुँचेगी, भीतर से वह बाहर आग लगने के कारण परेशान न होगा। बाहर की आग उसके भीतर की शांति को भस्म नहीं कर पाती; क्योंकि वो आग वहाँ तक पहुँचती ही नहीं।

इस तरह सात्त्विक व्यक्ति कार्य भी करता है और विश्राम भी करता है। वह जीवन के अनेक रूप-रंगों में रहता है, फिर भी उसके ज़ीवन के हर रूप-रंग में उसकी लयबद्धता का, शांति का स्वर-संगीत गूँजता है, फिर उसके जीवन के हर पहलू में सामंजस्य का स्वर गूँजता है।

भारतीय मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से यदि बात की जाए तो सात्त्विक श्रद्धा वाला व्यक्तित्व उत्कृष्ट व्यक्तित्व है, राजसिक श्रद्धा वाला व्यक्तित्व सामान्य व्यक्तित्व है और तामसिक श्रद्धा वाला व्यक्तित्व निकृष्ट व्यक्तित्व (असामान्य व्यक्तित्व) है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार अतिसामान्य या उत्कृष्ट व्यक्तित्व में सुपरचेतन मन विकसित होता है, सामान्य व्यक्तित्व में चेतन मन व अवचेतन मन सक्रिय होता है और असामान्य व्यक्तित्व में अचेतन मन अधिक सक्रिय होता है।

व्यक्तित्व के इन तीनों रूपों में परिवर्तन संभव है। डाकू अंगुलिमाल भगवान तथागत के संग के प्रभाव से, उनकी ऊर्जा के प्रभाव से भिक्षु में बदल सकता है। यही तप-साधना एवं जीवन-साधना का वास्तविक सुफल है। अब तक इस सत्य को नकारते रहे मनोविशेषज्ञ भी अब इसे स्वीकारने लगे हैं।

तमस् से सत्त्व की ओर गमन यही भारतीय आध्यात्मिक चिंतन-चेतना का सुदीर्घ अनुभवजन्य प्रयास रहा है। साथ ही आज के समाज को जीवन के वैश्विक परिदृश्य में सार्थक संदेश भी है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने इसी निष्कर्ष को सामूहिक स्तर पर उद्घोष करते हुए कहा है—**हम बदलेंगे-युग बदलेगा** तो क्यों न हम स्वयं को परिवर्तित कर युग-परिवर्तन की ओर कदम बढ़ाएँ। ❑

देवतरु का हो संरक्षण-संवर्द्धन

देवदारु एक बहुमूल्य वृक्ष है, जो हिमालय की शान व पहचान है। जहाँ इसके सदाबहार वन पाए जाते हैं, वो अमूमन ठंढी आबोहवा लिए पर्वतीय क्षेत्र होते हैं तथा वहाँ बरफ अवश्य गिरती है। देवदारु के बिना हिमालयन पर्यटकस्थलों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसके सौंदर्य के कारण ही इन स्थलों पर पर्यटकों व यात्रियों को वह शीतलता, शांति एवं दिव्यता का एहसास मिलता है, जो अन्यत्र दुर्लभ रहता है। शास्त्रों में देवदारु को देवताओं के वृक्ष रूप में परिभाषित किया है। भारत ही नहीं, पूरे विश्व में देवदारु को एक विशिष्ट वृक्ष माना जाता है।

मूलत: देवदारु का उत्पतिस्थल हिमालय को माना जाता है। इसीलिए अँगरेजी में इसे सेड्रस देयोदार या हिमालयीन देयोदार कहा जाता है। यह अफगानिस्तान, उत्तर भारत से गढ़वाल के पश्चिमोत्तर हिमालय प्रदेश, पश्चिमी नेपाल व दक्षिण तिब्बत के 3500 से 12 हजार फीट की ऊँचाई पर पाया जाता है। यह विभिन्न क्षेत्रों में देवदार, दियार, देवदारु, सुरवृक्ष आदि नाम से जाना जाता है। इसकी औसतन आयु 200 वर्ष तक रहती है।

इसके वृक्ष बहुत ऊँचे होते हैं, जो 75 से 80 मीटर तक ऊँचाई लिए होते हैं और बहुत सुंदर दिखते हैं। इनकी शाखाएँ चारों ओर फैली होती हैं, किंतु शाखाओं का अग्रभाग नीचे की ओर झुका होता है। इसके युवा वृक्ष पिरामिड आकार लिए होते हैं, जो बड़े होने पर भी अपने स्तूपाकार शिखर के कारण विशिष्ट पहचान रखते हैं।

यह एक बहुत लंबा व सीधा पेड़ है। इसका तना बहुत मोटा होता है, जो अढ़ाई से पौने चार मीटर की परिधि लिए होता है, कुछ तो 14 मीटर तक मोटे पाए गए हैं। इसके पत्ते हलके हरे रंग के मुलायम और अढ़ाई सेमी से लेकर पौने चार सेमी तक सूई के आकार के लंबे होते हैं, जो सघन गुच्छों में निकलते हैं और चँवर की तरह दिखते हैं। इसके फल शंकु आकार के 12.5 से 20 सेमी लंबे तथा 7.5 सेमी से 10 सेमी मोटे होते हैं, जो शाखाओं पर एकाकी स्थित होते हैं। इसकी लकड़ी पीले रंग की, सघन, सुगंधित, हलकी, मजबूत और रालयुक्त होती है। राल के कारण इसमें कीड़े और फफूँद नहीं लगते और जल का भी प्रभाव नहीं पड़ता, इसकी लकड़ी उत्कृष्ट कोटि की इमारती लकड़ी होती है।

इसका उपयोग एक सुंदर, सुगंधित एवं मजबूत लकड़ी के रूप में होता है, हिमालयी क्षेत्रों में लकड़ी के मकानों में इसका उपयोग बहुतायत में होता है, हालाँकि अभी इसके संरक्षण को लेकर चल रहे सरकारी अभियान के अंतर्गत अब इसकी लकड़ी सर्वसुलभ नहीं है। यहाँ के अधिकांश देवी-देवताओं के मंदिर इसकी काष्ठकला से सुसज्जित मिलते हैं। इसके वृक्ष की सुंदरता एवं दिव्यता को देखते हुए, इसे वृक्षराज कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। कई हिमालयी प्रांतों में तो इसे राज्य वृक्ष का दरजा तक प्राप्त है।

इसकी इन विशेषताओं के साथ देवदारु एक औषधीय गुणों से भरपूर वृक्ष भी है। महर्षि चरक ने इसे स्तन्यशोधन एवं अनुवासनोपग कहा है। महर्षि सुश्रुत ने वातशमन गण के अंतर्गत इसकी गणना की है। आश्चर्य नहीं कि इसकी गणना वेदनास्थापन औषधियों के अंतर्गत की गई है, जो वेदना या पीड़ा का हरण करती हैं।

देवदारु प्रमुखतया वातशामक एवं वेदनाशामक होने से वात रोगों में उपयोगी माना जाता है। जीर्ण संधिवात, आमवात, गृध्रसी, शिर:शूल आदि वायु रोगों में यह हितकारी रहता है। संधिवात में शोथ एवं वेदना को दूर करने के लिए इसका बाह्य प्रयोग किया जा सकता है। इसका तेल उत्तम वातशामक होता है। ऊष्ण होने से देवदारु गर्भाशय का शोधन करता है तथा तिक्त होने से स्तन्य का भी शोधन करता है, अत: सूतिका रोगों की यह प्रशस्त औषधि है। वात-कफ ज्वरों में भी यह लाभदायक है। पसीना लाने वाला एवं पाचन गुण होने से साम कफज्वर एवं साम वातज्वर में भी इसे उपयोग में लाया जाता है।

स्निग्ध, तिक्त एवं सुगंधित होने के कारण यह श्वसन संस्थान के रोगों में कफ को बाहर निकालता है तथा कफ

की दुर्गंध को मिटाता है। उत्तेजक होने से यह हृदय दौर्बल्य तथा रक्तविकारों में लाभप्रद रहता है। चर्म रोगों में इसके तेल को लगाया जाता है। उदर रोगों में यह प्रभावशाली रहता है तथा पाचन संस्थान के रोगों में हितकारी है। शार्गंधर संहिता में इसे वातव्याधि, ग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ आदि रोगों में लाभकारी कहा गया है। इसके साथ सरदरद, सिर, मुख, नाक, कान, गले के रोगों में यह हितकर माना गया है।

यूनानी मत में इसके पत्ते सूजन व क्षयजनित गलग्रंथियों पर लेप में काम आते हैं। इसकी लकड़ी शांतिदायक, पेट के अफारे को मिटाने वाली तथा कफ निस्सारक है। यह गठिया, संधिवात, बवासीर, गुरदे व मूत्राशय की पथरी, पक्षाघात, गुदभ्रंश रोगों में उपयोगी है। इसका तेल वेदना को दूर करने वाला और ज्वर नाशक है, जो चोट, जोड़ों के दरद, क्षयजनित ग्रंथियों और चर्म रोगों में उपयोगी रहता है।

इसके अतिरिक्त देवदारु को हाथीपाँव, जाँघ के सुन्न होने, सूजन, गलगंड, दाढ़ सूजन के रोग, सर दरद, संधिवात, चर्मरोग, अंडवृद्धि, हृदय रोग, सीने का दरद, सूजन, हिचकी, खाँसी, अजीर्ण, जलोदर, मोटापा, सन्निपात, प्रमेह, सायटिका, साइनस व विभिन्न प्रकार के ज्वरों में औषधि मिश्रणों के साथ क्वाथ, चूर्ण, अरिष्ट, आसव, घृत, कल्क, लेप, अंजन, तेल आदि के रूप में लिया जा सकता है, लेकिन इस संदर्भ में उचित चिकित्सकीय परामर्श के आधार पर ही इसका उपयोग करना उचित रहता है।

इन लाभों को देखते हुए हिमालय की शान इस दिव्य वृक्ष के संरक्षण एवं संवर्द्धन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। सरकारी स्तर पर वन विभाग इस दिशा में पर्याप्त सचेष्ट दिखते हैं, लेकिन इसके साथ जनजागरूकता एवं जनभागीदारी की भी आवश्यकता है, जिससे इस संदर्भ में बरती जा रही लापरवाही पर अंकुश लगाया जा सके; क्योंकि इसकी अवैध कटान का चिंताजनक चलन जारी है। हिमालयी क्षेत्रों में जहाँ भी खाली स्थान हो, इसके वृक्षों को अधिक-से-अधिक रोपने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में विशेष अभियान के तहत बड़े स्तर पर कार्य समय की माँग है। ❑

एक गाँव में एक व्यक्ति रहा करता था। उसकी अभिलाषा थी कि वह तीर्थाटन पर निकले, परंतु उसके वृद्ध पिता के साथ रहने के कारण ऐसा संभव नहीं हो पाता था। कोई और उपाय न निकलता देख, वह उनको साथ लेकर ही तीर्थयात्रा पर निकला।

पिता के स्वास्थ्य के कारण मार्ग में कई बार रुकना पड़ता तो उसके मुख पर आए खीझ के भाव यद्यपि बाहर नहीं निकलते थे, तब भी दिखाई तो पड़ ही जाते थे। एक दिन उसने राह में एक छोटी-सी बच्ची को देखा, जो अपनी गोद में एक छोटे-से बालक को लिए जा रही थी।

उत्सुकतावश उसने बालिका से पूछा—"बेटा! तुम इस बालक को इतनी देर से गोद में लिए हुए हो, तुम्हें वजन नहीं अनुभव होता?" बच्ची ने उत्तर दिया— "मैं तो अपने भाई को गोद में लिए हुए हूँ, उसे उठाने में भला कैसे भार लगेगा। पर ऐसा लगता है, जैसे आप किसी अपरिचित को साथ ले आए हैं; क्योंकि आपके चेहरे पर जरूर थोड़ा भार आ गया है।"

व्यक्ति को महसूस हुआ कि प्रेम से किया गया कार्य कभी बोझ नहीं बनता, पर अनमने भाव से किया गया कार्य बोझ जरूर बन जाता है।

शिक्षक दिवस पर

भारतीय दर्शन के पुरोधा डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन

भारत के द्वितीय राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन की आर्ष मेधा, अपार विद्वत्ता, गहन तर्कनिष्ठ विवेचन-शैली, अद्‌भुत व्याख्यान-कौशल और निर्विवाद प्रशासनिक दक्षता के विषय में जनमानस में कभी कोई संदेह नहीं रहा। उन्होंने एक सामान्य शिक्षक के रूप में जीवन प्रारंभ किया था, लेकिन अपने विशिष्ट अध्यवसाय, गुण-गरिमा और प्रखर प्रतिभा के बल पर वे भारत गणराज्य के सर्वोच्च पद तक पहुँच गए। पूर्व के तत्त्वज्ञान को उन्होंने पश्चिमी जगत् में उसी मुहावरे और भाषा में पहुँचाया और समझाया, जो पाश्चात्य विद्वानों की जानी-पहचानी थी।

वे विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपति रहे, रूस जैसे बड़े देश में राजदूत रहे, उपराष्ट्रपति और राष्ट्रपति जैसे पदों को उन्होंने सुशोभित किया, लेकिन वे सदैव अपने को शिक्षक ही मानते रहे। इसीलिए प्रतिवर्ष संपूर्ण भारत भर में 5 सितंबर को उनका जन्मदिन शिक्षक दिवस के रूप में आदर से मनाया जाता है। विज्ञान और अध्यात्म, पूर्व और पश्चिम तथा पुरातन और अद्यतन के समन्वय के लिए आजीवन सचेष्ट रहे स्व० डॉ० राधाकृष्णन का जीवन—आलोक की वह समुज्ज्वल दीपशिखा है, जिसमें भारत आज भी अपनी यथार्थ पहचान का संधान कर सकता है।

उनके पुत्र सर्वपल्ली गोपाल के द्वारा लिखित पुस्तक राधाकृष्णन : ए बायोग्राफी से ज्ञात होता है कि डॉ० राधाकृष्णन को अपनी किशोरावस्था में स्वामी विवेकानंद के द्वारा लिखित उन पत्रों से बड़ी प्रेरणा मिली थी, जिनमें उन्होंने भारतीय युवकों को राष्ट्रीय गौरव के संवर्द्धन हेतु प्रेरित किया है। महान क्रांतिकारी वीर सावरकर के द्वारा प्रणीत 'भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम' शीर्षक ग्रंथ ने भी उनके मन पर गहरी छाप छोड़ी थी। ईसाई मिशनरियों के कार्यकलाप से भी उन्हें बहुत प्रारंभ में ही वितृष्णा हो गई थी।

इस पुस्तक में वाई० वी० कुमार दास की उस थीसिस से, जो मद्रास यूनिवर्सिटी में अप्रकाशित रखी है और जिसका शीर्षक है—'प्रोटेस्टेंट मिशनरी : इम्पैक्ट एंड क्वेस्ट फॉर नेशनल आइडेंटिटी'—ऐसे अनेक उद्धरण दिए गए हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि ईसाई धर्म के प्रचारकों ने अपने द्वारा प्रकाशित साहित्य के माध्यम से भारतीय ईसाइयों को यह स्पष्ट निर्देश दिया था कि वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का समर्थन न करें।

डॉ० गोपाल ने सप्रमाण इस बात का उल्लेख किया है कि ईसाई नौकरशाह, मिशनरी और ईसाई जातिवादी—सभी उस समय स्वतंत्रता के घोर विरोधी थे। नोबेल पुरस्कार पाने के बाद जब पश्चिमी देशों में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर पर पश्चिमी प्रभाव के दावे जोर-शोर से किए जा रहे थे, उस समय डॉ० राधाकृष्णन ने ही उनका खंडन निर्भीकतापूर्वक किया और यह युक्तिपूर्वक सिद्ध किया कि उन पर हिंदुत्व और विशेषत: वेदांत का ही मूलगामी प्रभाव है।

डॉ० राधाकृष्णन की शिक्षा-दीक्षा यद्यपि ईसाई मिशनरियों के विद्यालयों में ही मुख्यतया संपन्न हुई थी, उनके गुरुजनों में भी ईसाइयों का बाहुल्य था, फिर भी इस 20वीं शताब्दी के आरंभ में, ईसाई मिशनरियों के द्वारा हिंदू धर्म पर किए जा रहे आक्रमणों के विरोध में वे खुलकर खड़े ही नहीं हो गए थे, बल्कि प्रत्याक्रमण की मुद्रा में भी आ गए थे।

के० सी० चाको को लिखे गए एक पत्र में उन्होंने ईसाइयों के हमलों का जोरदार विरोध करने का आह्वान किया है। उन्होंने ईसाई मिशनरियों के द्वारा किए जा रहे धर्मांतरण का विरोध करते हुए कहा कि धर्मांतरण की कोई आवश्यकता नहीं है—आवश्यकता है विभिन्न धर्मों में निहित अच्छी बातों को समझने की (मैसूर विश्वविद्यालय पत्रिका, 1923, पृष्ठ-187-98)। एम० ए० में उन्होंने वेदांतनिष्ठ आचार दर्शन पर शोधप्रबंध लिखा, जिसमें उन्होंने यह कहने में संकोच नहीं किया कि भारतीय विचारक अत्यंत पुरातन युग में भी गहन दार्शनिक विवेचना में संलग्न थे, जब अन्य देशों के लोग केवल कच्चा पशु-मांस भर खाना सीख पाए थे।

शंकर वेदांत दर्शन की पराकाष्ठा को वे समझते थे—उनके अनुसार केवल यही वह संपूर्ण दर्शन है, जिसमें धर्म, तत्त्वमीमांसा और सदाचार का समुचित समन्वय है। डॉ0 राधाकृष्णन द्वारा प्रदत्त भारतीय दर्शन की वैश्विक विवेचना ने उसको एक ऐसा गौरव प्रदान किया, जिसकी गरिमा आज संपूर्ण वैश्विक पटल पर अनुभव की जा सकती है। भारतीय दर्शन को उसकी प्रतिष्ठा प्रदान करने में सर्वपल्ली राधाकृष्णन का योगदान अविस्मरणीय कहा जा सकता है। शिक्षक दिवस का यह पर्व उनके प्रति सम्मान से भर देता है। ❑

घटना रूस के साइबेरिया क्षेत्र की है। बहुत वर्षों पहले वहाँ एक छोटा-सा गाँव हुआ करता था, जो अपनी एक अनूठी परंपरा के लिए विख्यात था। परंपरा यह थी कि गाँववाले अपनी जमीन बिना किसी मूल्य के किसी भी आगंतुक को दे दिया करते थे, यदि वह उनके द्वारा रखी गई शर्तों को पूर्ण कर दे। यह बात अलग थी कि वे शर्त क्या रखते थे, इसका पता किसी को भी नहीं लग पाया था। ऐसी ही किंवदंतियों को सुनकर एक किसान उस गाँव पहुँचा। उसने गाँववालों से जब इस परंपरा के विषय में पूछा तो गाँववालों ने इसकी पुष्टि की और उसे प्रधान के पास ले गए। गाँव का प्रधान उसे देखकर जोर से हँसा और बोला—"लो एक और आ गया।" किसान सुनकर आश्चर्यचकित हुआ और पूछने लगा—"आप हँसे क्यों?" गाँव का प्रधान बोला—"हँसने की बात यह है कि यहाँ तो लगभग हर दिन ही कोई-न-कोई इस शर्त का पता लगाने आता है, पर आज तक उसको जीतकर कोई वापस नहीं लौटा।" किसान ने पूछा—"शर्त क्या है?" ग्राम प्रधान बोला—"सारी जमीन तुम्हें निःशुल्क उपलब्ध है। इसके लिए मात्र एक शर्त है कि तुम यहाँ खिंची रेखा से सूर्योदय से दौड़ना शुरू करोगे और सूर्यास्त होने तक जितनी जमीन नापकर तुम इसी रेखा तक आ जाओगे, उतनी जमीन तुम्हारी हो जाएगी, पर यदि नहीं आ पाए तो तुम्हें आजन्म गुलाम बनकर यहीं रहना पड़ेगा।"

किसान को लगा कि यह तो बड़ी ही आसान शर्त है और उसने तुरंत हाँ भर दी। सूर्योदय पर उसने भागना शुरू किया और दोपहर होने तक उसने सात-आठ मील जमीन माप ली तो उसका लालच बढ़ने लगा। उसने साथ लाया भोजन और पानी वहीं छोड़ा और सोचा कि एक दिन नहीं भी खाया तो क्या, आज ज्यादा-से-ज्यादा जमीन नाप लेते हैं। भागते-भागते दोपहर के तीन बज गए, पर ज्यादा जमीन का लालच उसे दूसरी तरफ खींचे जाता था। मन मारकर वह वापस लौटा तो खिंची रेखा से आधा मील दूर जमीन पर गिर पड़ा। ग्राम प्रधान वहीं पास खड़ा था और उससे बोला—"शर्त आसान है, परंतु मनुष्य के लालच का अंत नहीं। इसीलिए आज तक इस शर्त को पूरा करने वाला कोई मिला नहीं और जितने गाँववाले दिखाई पड़ते हैं, ये सब शर्त हारे हुए गुलाम ही हैं।"

परम आनंद का द्वार है ध्यान

महर्षि पतंजलि योगसूत्र (3.2) में ध्यान के विषय में कहते हैं—

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

अर्थात जहाँ चित्त को लगाया जाए, उसी में वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है।

दरअसल ऋषिवर यह कहना चाहते हैं कि चित्त को एक जगह यानी नाभिचक्र, हृदय कमल, सूर्य, चंद्र, आकाश या किसी देवता आदि में लगाना धारणा है, पर चित्त जहाँ भी लगा हुआ है, ठहरा हुआ है, उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना और उसके बीच में किसी भी दूसरी वृत्ति का न उठना ध्यान है।

उदाहरण के लिए परमात्मा के किसी साकार अथवा निराकार रूप पर मन को लगाना, रोकना या ठहराना धारणा है, एकाग्रता है, पर परमात्मा के उस साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण रूप पर मन का पूर्णत: रुक जाना, लग जाना, ठहर जाना ध्यान है। उस समय मन में, चित्त में परमात्मा के अलावा कोई दूसरी वृत्ति उठे ही नहीं, बस, वही परमात्मवृत्ति बनी रहे, वही ध्यान है।

आकाश की धारणा करते-करते मन का आकाश में ही रुक जाना, लग जाना, ठहर जाना ध्यान है। वहाँ आकाश में डूबा हुआ मन स्वयं आकाश रूप होकर, आकाशमय हो जाता है। वहाँ मन आकाश में होता है और आकाश ही मन में होता है। अस्तु उस समय मन में एकमात्र आकाश की ही अखंड वृत्ति है, अन्य किसी की नहीं। अंतत: मन की उस अखंड वृत्ति का आकाश में ही लय हो जाना, आकाश में ही डूब जाना, मन का आकाश में ही मिट जाना समाधि है।

समाधि ही ध्यान की परिणति है, ध्यान का निष्कर्ष है। उसी प्रकार मन को प्रात:कालीन उदीयमान सूर्य पर लगाना, ठहराना धारणा है, पर जब वह धारणा इतनी गहरी होने लगे कि मन उसी सूर्य में, उसी छवि में, उसी वृत्ति में रुक जाए, ठहर जाए, तब वह ध्यान है। मन का उसी वृत्ति में, उसी सूर्य में पूर्णत: मिट जाना, लय हो जाना, विसर्जित हो जाना ही समाधि है। तब वहाँ मन ही सूर्य है और सूर्य ही मन है अर्थात तब ध्याता और ध्येय दोनों एक हो जाते हैं, अभिन्न हो जाते हैं। साधक और सविता दोनों एक हो जाते हैं, अभिन्न हो जाते हैं।

ध्याता यज्ञकुंड में अग्नि की लपटों के बीच बैठी उस समिधा की तरह है, जो अभी दृश्यमान है, पर जैसे-जैसे उस समिधा में अग्नि धधकती जाती है, बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे वह अग्नि की लपटों के बीच ओझल होने लगती है, अदृश्य होने लगती है। अंतत: वह स्थिति आ जाती है, जब समिधा पूर्णरूपेण अग्निरूप हो जाती है। उस समिधा का तब कोई अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता। समिधा स्वयं भी अग्नि हो जाती है। तब अग्नि और समिधा में कोई भेद नहीं रहता। दोनों अभेद हो जाते हैं, अभिन्न हो जाते हैं, एकरूप हो जाते हैं। समाधि के विषय में ऋषिवर पतंजलि योगसूत्र (3.3) में कहते हैं—

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि:।

अर्थात जब ध्यान में केवल ध्येयमात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निजस्वरूप शून्य-सा हो जाता है, तब वही ध्यान समाधि हो जाता है। जैसे आतिशी काँच के टुकड़े पर सूर्य की किरणें एकत्रित करने पर आग उत्पन्न हो जाती है और उससे कागज जल उठता है, वैसे ही ध्याता का ध्येय पर (परमात्मा पर या ध्यान की अन्य वस्तु पर) ध्यान जैसे-जैसे गहरा होता जाता है, वैसे-वैसे मन में ध्यान की ऊर्जा, ध्यान की अग्नि एकत्रित होती जाती है। फिर वह ध्यान ऊर्जा, ध्यान अग्नि इतनी सघन व तीव्र हो जाती है कि उस ध्यानाग्नि से ही ध्याता के अचेतन मन में अंकित कर्म-संस्कारों के बीज जलने लगते हैं।

वैसे ही जैसे पूरे वन-क्षेत्र को भस्मीभूत करने के लिए माचिस की एक तीली ही पर्याप्त होती है। एक छोटी-सी चिनगारी देखते-ही-देखते दावानल के रूप में तब्दील हो जाती है और पूरा वन-प्रदेश जलकर खाक हो जाता है। वैसे ही चित्त में उत्पन्न ध्यान की प्रचंड अग्नि

चित्त में व्याप्त संस्कारों के विशाल वन-प्रदेश को धीरे-धीरे अपनी चपेट में ले लेती है और देखते-ही-देखते पूरा वन-प्रदेश धूँ-धूँ करके जल उठता है। हाँ, यह स्थिति रातोंरात तो नहीं आ जाती, इसके लिए साधक को अविचलित रहकर, नियमित रूप से, धैर्य व श्रद्धापूर्वक दीर्घकाल तक ध्यान के अभ्यास में बने रहना होता है। तब जाकर उसके मन में वह प्रचंड ध्यानाग्नि उत्पन्न हो पाती है, जिससे वह अपने चित्त के संस्कारों का समूल, सबीज नाश कर पाने में सफल होता है।

एक लोहार जब एक विशेष तकनीक से नीचे से हवा दे-देकर कोयले की अँगीठी को धधकाता है और उसमें आग की लपटें पैदा कर देता है, तब उस अँगीठी के ऊपर रखी हुई लौह धातु अँगीठी से प्रकट हुई आग की लपटों से गरम हो-होकर लाल हो जाती है। तब लोहार उस लौह धातु को अँगीठी से बाहर निकालकर उसे हथौड़े से पीटता है, फिर वह जैसे ही ठंढी हो जाती है, उसे पुनः वह उसी अँगीठी के ऊपर रखकर अँगीठी को फिर से नीचे से हवा देकर धधकाता है, जिससे वह लोहा फिर से गरम होकर लाल हो जाता है। तब उस लाल हुए लोहे को बाहर निकालकर वह उसे पुनः हथौड़े से पीटता है।

यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक कि वह लोहा पूरी तरह जंगरहित न हो जाए या उसे मनवांछित आकार न दे दिया जाए। ध्यान से भी मन एकाग्र होकर अग्निरूप हो जाता है, जिससे मन के मल, मन के संस्कार जल उठते हैं और अंततः मन भी उसी अग्नि में वैसे ही मिट जाता है—जैसे जिस लकड़ी की अग्नि से चिता जलाई जाती है, अंत में वह लकड़ी भी चिता की अग्नि में डाल दिए जाने पर जलकर राख हो जाती है। जैसे एक स्वर्णकार स्वर्ण के मल को दूर करने एवं उसमें चमक पैदा करने के लिए पहले अँगीठी में एक विशेष यंत्र से हवा देकर अग्नि की लपटें पैदा करता है, फिर उन लपटों को एक विशेष पाइपनुमा नली से फूँककर उन लपटों को स्वर्ण धातु पर छोड़ता है, फेंकता है, पहुँचाता है और उसे बीच-बीच में पीटता भी जाता है। यह क्रम उस स्वर्ण धातु के मलरहित हो चमक जाने तक जारी रहता है।

उसी प्रकार ध्याता भी ध्यान की अवस्था में चेतन मन में प्रकट हुई ध्यान की अग्नि, ध्यान की ऊर्जा को अचेतन मन में फेंकता है, छोड़ता है, पहुँचाता है और चित्त के मल व संस्कारों को जलाता है। ध्यान का यह क्रम, उपक्रम लंबे अंतराल तक चलते रहने से अचेतन मन संस्कारशून्य हो, मलरहित हो चमक उठता है, परिष्कृत हो उठता है।

तब आत्मा के ऊपर जमे हुए माया व अविद्यारूपी मलों का आवरण भी मिट जाता है और ध्याता, साधक, योगी के अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश आदि पंचक्लेश तथा कृष्ण, शुक्ल और मिश्रित ऐसे तीनों प्रकार के कर्म-संस्कार समूल नष्ट हो जाते हैं और योगी, साधक, ध्याता, जीवनमुक्त ही कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है। तब उसे हर पल ही परम आनंद, ब्रह्मानंद की अनुभूति होती रहती है। महर्षि पतंजलि के शब्दों में कहें तो उस समय चित्त की वृत्तियों का पूर्णतः निरोध हो जाने से द्रष्टा की (आत्मा की) अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है, अर्थात वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

भगवान कुछ करने जा रहे हैं और विश्व की दिशा उलटने वाली है, उसे सर्वनाशी गर्त में गिरने से बचाकर उज्ज्वल भविष्य की दिशा में लौटने के लिए तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है। इन दिनों सूक्ष्मजगत् में दिव्य हलचलें इसी स्तर की हो रही हैं और उनका क्रम तीव्र से तीव्रतर होता जा रहा है—निकट भविष्य में वह तीव्रतम होने जा रहा है। वह मनुष्यकृत आंदोलन नहीं है, जो आज चले और कल ठप हो जाए।

परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी के शब्दों में कहें तो चित्त की संस्कारशून्य, निर्विकार, निर्विचार और निर्मल अवस्था का नाम ही समाधि है। चित्त की इस निर्मल, निर्विकार व निर्दोष अवस्था में ही जीवात्मा को अपने वास्तविक सत्-चित्-आनंदस्वरूप का बोध होता है। उस अवस्था में आत्मचेतना परमात्म-चेतना से जुड़कर चैतन्य हो उठती है। आत्मा ईश्वरीय ऊर्जा से ओत-प्रोत हो उठती है और आत्मा तथा परमात्मा के बीच दिव्य आदान-प्रदान शुरू हो जाता है।

ध्यान से जुड़ते ही आत्मचेतना परमात्मचेतना की ओर आकर्षित होती जाती है और आनंदित होने लगती है। साधक अपने स्व से, आत्मचेतना से परिचित हो आत्मोन्मुख हो उठता है। उसका अंत:करण आनंदातिरेक में झूमने लगता है। साधक या ध्याता के व्यक्तित्व में अद्भुत बदलाव दिखने लगता है; क्योंकि वह ध्यान में ईश्वरीय ऊर्जा से जुड़ रहा होता है, ईश्वरीय ऊर्जा से ओत-प्रोत हो रहा होता है, ईश्वरीय ऊर्जा, ईश्वरीय आनंद से सराबोर हो रहा होता है।

उस ध्यान में शनै:-शनै: और भी गहराई में उतरते हुए, ध्यान के प्रबल प्रवाह में बहते हुए साधक स्वयं को ब्रह्म समुद्र में, ब्रह्म-आनंद में डूबता हुआ, लीन होता हुआ, विलीन होता हुआ अनुभव करता है। दूसरी ओर अचेतन के परिष्कार से ध्याता कई मानसिक विकारों, व्याधियों से भी मुक्त हो जाता है। मन के परिष्कृत होने से वह न सिर्फ मानसिक रूप से, बल्कि शारीरिक रूप से भी स्वस्थ होने लगता है। उस अवस्था में वह विविध मनोकायिक व्याधियों से मुक्त होकर सुखी व स्वस्थ जीवन जीने लगता है।

ध्यान के कारण उत्पन्न मन की एकत्रित ऊर्जा, एकाग्रता के कारण वह जीवन के अन्य सामाजिक क्षेत्रों में भी चहुँओर सफलताएँ प्राप्त करने लगता है। उसका आत्मबल, मनोबल इतना प्रचंड हो जाता है कि विपरीत- से-विपरीत परिस्थितियों में भी वह हार नहीं मानता और उन विपरीत परिस्थितियों को भी अपने अनुकूल बना लेता है। हताशा-निराशा उसे कभी छू भी नहीं पाते; क्योंकि उसकी जीवन-दृष्टि पूर्णत: सकारात्मक व आशावादी हो जाती है।

समाधि वह अद्वैत अवस्था है, जिसमें जीवात्मा को, साधक को ध्याता को आत्मा और ब्रह्म की एकता की अनुभूति होती है। अब समुद्ररूपी ब्रह्म का ध्यान करने वाला ध्याता, ध्यान करने वाला मन रहा ही नहीं, बचा ही नहीं, वह भी ब्रह्मसमुद्र में लीन हो गया, विलीन हो गया, विसर्जित हो गया। अब जो मन स्वयं ब्रह्मरूप हो गया, उसमें कोई अन्य वृत्ति पैदा होगी भी क्यों और कैसे?

यहाँ तो ध्याता का, मन का, अपना कोई अलग अस्तित्व रहा ही नहीं। यहाँ ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों एक रूप हो गए, एक जो हो गए। यहाँ मनरूपी घड़े का जल फूटकर समुद्ररूपी ब्रह्मजल में ही पूर्णत: लीन, विलीन और विसर्जित जो हो गया। संत कबीर के शब्दों में कहें तो—

जल में कुंभ, कुंभ में जल है,
बाहर-भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना
यह तथ्य कहयो ज्ञानी॥

अर्थात जल में घड़ा है और घड़े में जल है। घड़े के बाहर-भीतर पानी ही है, पर जब वह घड़ा फूट जाए तब उस घड़े का जल समुद्र के जल में ही समा जाता है अर्थात आत्मा का परमात्मा में विलय हो जाता है। इस तथ्य को ज्ञानी ही जानते हैं।

यही आत्मा और ब्रह्म की एकता की, आत्मा और परमात्मा की एकता की अभेद, अभिन्न व अद्वैत स्थिति है, जिसे समाधि, कैवल्य, निर्वाण, मोक्ष, मुक्ति, आत्मसाक्षात्कार, भगवद्दर्शन आदि विविध नामों से जाना जाता है। अस्तु यह स्पष्ट है कि ध्यान के निरंतर अभ्यास और प्रभाव से जैसे-जैसे चित्त की वृत्तियाँ समाप्त होती जाती हैं, मिटती जाती हैं, वैसे-वैसे चित्त निर्मल होता जाता है, मन निर्मल होता जाता है।

उसी निर्मल मन में, निर्मल चित्त में समाधि घटित होती है, तब साधक को ध्यान करना नहीं होता, बल्कि उसके भीतर ध्यान स्वयमेव होने लगता है, घटने लगता है। वह बंद आँखों से ही नहीं, बल्कि खुली आँखों से भी ध्यान में ही होता है। किसी सुखासन, पद्मासन आदि आसन में बैठकर ही नहीं, बल्कि चलते हुए, दौड़ते हुए, खाते हुए, उठते हुए, बैठते हुए, जागते हुए, सोते हुए भी वह ध्यान में ही होता है; क्योंकि तब उसका मन ही ध्यान बन जाता है।

जैसे कुछेक दिन के उड़ने और उड़ाने के अभ्यास से जब एक छोटी-सी चिड़िया उड़ना सीख जाती है, तब उड़ना उसके लिए अभ्यास नहीं, बल्कि उसका स्वभाव हो जाता है। उड़ान हर वक्त उसके पंखों में समायी हुई होती है, इसलिए वह जब चाहती है ऊँचे नीले गगन में, विशाल वन प्रदेश, विशाल सागर के ऊपर उड़ान भर आती है।

उसी प्रकार ध्यान के निरंतर अभ्यास से जब ध्याता में ध्यान रच-बस जाता है, ध्यान उसके अंतस् में स्थायी रूप से उतर आता है, जब उसका मन ही ध्यान बन जाता है, तब वह उठते-बैठते, चलते-फिरते अपना कार्य व्यापार करते हुए हर वक्त ध्यान में ही होता है, वह ध्यान में ही उड़ानें भर रहा होता है। वह हर पल अपने अंतस् के अंतरिक्ष में,

ऊँचे-नीले गगन में ऊँची-ऊँची उड़ाने भरता हुआ आनंदित होता रहता है। वह अपने आत्मलोक के उन्मुक्त गगन में उड़ता हुआ उल्लसित और आह्लादित होता रहता है और गाता जाता है—

मैं पंक्षी अब आत्मलोक का,
उड़ आया हूँ उच्च गगन में,
मैं भी अब सब देख रहा हूँ,
नील गगन में चाँद-सितारे,
लाल-किरण सी चोंच खोल,
मैं चुग रहा हूँ तारक दाने,
मैं पंक्षी उन्मुक्त गगन का,
उड़ आया हूँ उच्च गगन में।

यह वह अवस्था है, जिसमें साधक का मन सदा ब्रह्म में ही लीन है, विलीन है, विसर्जित है। जब ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों एकरूप हो गए तो फिर कौन किसका ध्यान करे? अब वह सारे बंधन तोड़ मुक्त है, उन्मुक्त है। यह वह अवस्था है, जिसमें साधक, ध्याता, आशा-निराशा, मान-अपमान से परे परम आनंद की अवस्था में है, मन शांत है, निर्विकार है, निर्विचार है, प्रसन्न है, प्रफुल्लित है। हृदय में छलकती हुई करुणा, प्रेम, संवेदना आदि दिव्य भावनाएँ हैं। आत्मा ब्रह्म के परम आनंद में मग्न है, निमग्न है। अब साधक, ध्याता की दृष्टि में यह अखिल विश्व-ब्रह्मांड परमात्मा का ही साकार रूप है, उसकी दृष्टि में विश्व-ब्रह्मांड के घट-घट में ब्रह्म का ही वास है, ब्रह्म की अनुभूति है, अभिव्यक्ति है। उसे लगता है कि यह सारा जहाँ अपना ही विस्तार है। अस्तु सारा विश्व ही अपना है और हम सारे विश्व के हैं। उसे सर्वत्र ईश्वर की दिव्यता, ईश्वर की ज्योति दिखने लगती है। जैसा कि कबीरदास जी ने कहा है—

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

अर्थात मुझे हर जगह ईश्वरीय ज्योति दिखती है। अंदर-बाहर, हर जगह ईश्वरीय ज्योति देखते-देखते मैं भी ईश्वरीय हो गई। मैं भी लाल हो गई।

सचमुच परम आनंद का द्वार है ध्यान। ❑

महर्षि जाबालि ने पर्वत पर ब्रह्मकमल खिला देखा तो उसकी शोभा और सुगंध पर मुग्ध होकर ऋषि सोचने लगे कि उसे शिव जी के चरणों में चढ़ने का सौभाग्य प्रदान किया जाए। ऋषि को समीप आया देखकर पुष्प प्रसन्न तो हुआ, पर साथ ही आश्चर्य व्यक्त करते हुए आगमन का कष्ट उठाने का कारण भी पूछा। जाबालि बोले—"तुम्हें शिव सामीप्य का श्रेय देने की इच्छा हुई तो अनुग्रह के लिए तोड़ने आ पहुँचा।"

यह सुनकर पुष्प की प्रसन्नता खिन्नता में बदल गई। उसकी उदासी का कारण महर्षि ने पूछा तो फूल ने कहा—"शिव सामीप्य का लोभ संवरण न कर सकने वाले कम नहीं। फिर देवता को पुष्प जैसी तुच्छ वस्तु की न तो कमी है और न इच्छा। ऐसी दशा में यदि मैं तितलियों-मधुमक्खियों जैसे क्षुद्र कृमि-कीटकों की कुछ सेवा-सहायता करता रहता तो क्या बुरा था? आखिर इस क्षेत्र को खाद की भी तो आवश्यकता होगी, जहाँ मैं उगा और बढ़ा?" ऋषि ने पुष्प की बेबाकी और भाव-गरिमा को समझा और वे भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए, उसे यथास्थान छोड़कर वापस लौट आए।

जड़ों से जुड़कर मिलेंगे समाधान

आज फिर प्रकृति की गोद में विचरण का सुअवसर जिज्ञासु धैर्यवीर के पास था। वह एकाकी ही गहरे जंगल में प्रवेश कर रहा था। आज पुनः जैसे प्रकृति माँ का आह्वान उसे इस यात्रा के लिए प्रेरित कर रहा था। प्रकृति में धैर्यवीर साक्षात् परमात्मा के दर्शन कर रहा था, उसके कण-कण से उसे परमात्मा का वैभव झरता प्रतीत हो रहा था। प्रकृति का हर घटक जैसे उसका इस जंगल में स्वागत कर रहा था।

परिवेश की गहन शांति एवं नीरवता में धैर्यवीर समाधिस्थ प्रकृति के दिव्य स्वरों को सुनने का प्रयास कर रहा था, इसके साथ अपने विचार-भावों को समाहित करते हुए वह अपने अंतःकरण की अंतर्ध्वनि को भी सुनने की स्थिति में था। प्रकृति में वह ईश्वर के विराट वैभव को अनुभव कर रहा था, तो इसी के साथ वह आत्मचिंतन की ओर भी प्रवृत्त हो रहा था।

हरे-भरे जंगल उसे प्रकृति की समृद्धता का दर्शन करा रहे थे, आकाश की ऊँचाइयों से संवाद करते उत्तुंग पर्वत उसे ध्यानमग्न तपस्वी के विग्रह लग रहे थे। गहरी घाटियाँ उसे एक लापरवाह यात्री की नियति की ओर इशारा कर रही थीं, जो बिना एक भी पग की चूक के साथ चिर समाधि की प्रतीक्षा में थी। प्रकृति में निहित एक सर्वव्याप्त चैतन्य काली तत्त्व का गहरा एहसास इन पलों में वह कर रहा था।

ये घाटियाँ उसे अंतर्जीवन में लापरवाह साधकों की पतनोन्मुख नियति की ओर इशारा करती प्रतीत हो रही थीं। जीवन में गिरने व पतन की संभावनाओं के साथ सामने खड़े शिखर जीवन के उत्थान एवं उत्कर्ष की असीम संभावनाओं को दरसा रहे थे। वह तो इसी पथ का पथिक बन आगे बढ़ रहा था। राह में रंग-बिरंगे पुष्पगुच्छ अपनी सुगंध के साथ उसकी यात्रा में एक नया रस घोल रहे थे। हरे-भरे विशाल वृक्षों की शाखाओं पर उछलते-कूदते वन्यजीव उसे आनंदित कर रहे थे।

राह के सदाबहार वृक्ष उसे जीवन की अखंड संभावनाओं की ओर इशारा कर रहे थे। आवश्यकता बस, अभीप्सा की तीव्रता व पात्रता के विकास भर की है। राह के निर्मल जलस्रोत जहाँ उसकी प्यास बुझाते, इनसे मिलकर बने झरने उसे पावन उद्देश्य के साथ अपनी मंजिल की ओर निरंतर बढ़ते रहने का संदेश दे रहे थे। सुदूर पहाड़ी के शिखर पर बने मंदिर उसे अपने इष्ट का सुमिरन करा रहे थे, जिसे वह ध्यान के पलों में अपनी चेतना के शिखर पर निहारता आया था।

प्रकृति की गोद में जैसे धैर्यवीर अपने अस्तित्व के स्रोत से जुड़ चुका था व जीवन के सकल समाधान उसके

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

अर्थात जो मनुष्य सभी प्राणियों में एक ही परमात्मा को देखता है, वह उसके पश्चात किसी से घृणा नहीं करता है।

सामने प्रत्यक्ष हो रहे थे। साथ ही याद आ रहे थे, प्रकृति से कटे बेतरतीव महानगरीय जीवन के वो अभिशप्त पल, जहाँ जीवन कंकरीट के जंगलों में तब्दील हो रहा था, जीवन यांत्रिकता का पर्याय बन चुका था। अपनी जड़ों से कटे अस्तित्व में वहाँ समाधान के सकल बाहरी प्रयास एक समस्या का समाधान करते दूसरी को जन्म दे रहे थे।

आज धैर्यवीर को प्रकृति की गोद में स्पष्ट संदेश मिल रहा था कि इस विडंबना का एक ही समाधान है, मनुष्य को अपनी जड़ों से जुड़ना होगा, प्रकृति का सम्मान करना होगा, इससे तालमेल बिठाते हुए कण-कण में व्याप्त ईश्वरीय तत्त्व की आराधना करनी होगी, संस्कृति के उच्चतर मूल्यों को धारण करना होगा। सारतः अपनी जड़ों से जुड़कर ही जीवन के वास्तविक समाधान मिलने शुरू होंगे, इससे पूर्व नहीं। ❑

समस्त सुखों का आधार है धर्म

संसार में हर प्राणी सुखी रहना चाहता है। हर प्राणी सुख पाना चाहता है, पर सुख पाने का मार्ग है क्या? अपार जनसमूह को संबोधित करते हुए स्वामी सत्यमदास कह रहे थे—''देवियो और सज्जनो! संसार में सुख पाने का एक ही मार्ग है और वह है धर्म। धर्म ही समस्त सुखों का आधार है, स्रोत है।

''जो धर्म के मार्ग पर चलता है, उसे सुख प्राप्त होता है और जो अधर्म के मार्ग पर चलता है, उसे दुःख प्राप्त होता है। अस्तु जो संसार में सुखी रहना चाहता है, उसे धर्म के मार्ग पर ही चलना चाहिए; क्योंकि धर्म भौतिक सुख ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक सुख भी प्रदान करता है।

''जो व्यक्ति धर्म के मार्ग पर नहीं चलता है, वह मनुष्य होकर भी पशु के समान ही है। मनुष्य और पशुओं के जीवन में एकमात्र धर्म का ही तो अंतर है। पशु भी पेट भरने के लिए भोजन करता है। पशु भी प्रजनन करता है, परिवार का पालन करता है। मनुष्य भी भूख मिटाने को भोजन करता है। मनुष्य भी संतानोत्पत्ति करता है। मनुष्य भी परिवार का पालन करता है। तो खान-पान, पेट-प्रजनन, विषय-वासनाएँ व परिवार-पालन आदि क्रियाएँ पशु और मनुष्य दोनों के ही जीवन में देखने को मिलती हैं।

''एक धर्म ही है, एक धर्माचरण ही ऐसा है, जो पशुओं के जीवन में देखने को नहीं मिलता। इसलिए यदि मनुष्य होकर भी व्यक्ति धर्माचरण न करे और मात्र खान-पान, प्रजनन, परिवार-पालन ही करे तो फिर वह मनुष्य होकर भी पशु के समान ही है।''

स्वामी सत्यमदास जी धाराप्रवाह बोले जा रहे थे कि तभी सत्संग में बैठा एक जिज्ञासु व्यक्ति खड़ा हुआ और बड़ी ही विनम्रतापूर्वक अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हुए पूछा—''महात्मन्! यदि धर्म इतना महत्त्वपूर्ण है तब तो हमें इसका पालन अवश्य ही करना चाहिए। हम आएदिन धर्म के बारे में लोगों को बातें करते सुनते हैं, पर वस्तुतः धर्म है क्या? यह हमें स्पष्ट करने की कृपा करें। तभी हम धर्म की सही पहचान कर उसे अपने जीवन में जी सकते हैं और उसका पालन कर सकते हैं।''

उस व्यक्ति के सारगर्भित प्रश्न को सुनकर स्वामी जी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—''वत्स! जो धारण करने योग्य है, वही धर्म है। जैसे किसी वृक्ष का आधार उसकी जड़ है; क्योंकि वह वृक्ष, जड़ के सहारे ही खड़ा है। जड़ से ही उसे जीवन रस प्राप्त होता है। उस जड़ से प्राप्त जीवन रस के कारण ही एक नन्हा-सा पौधा विशाल वृक्ष बन गगन में चमकने लगता है। जड़ से जीवन रस नहीं प्राप्त होने पर एक पौधा न तो वृक्ष बन सकता है और न ही उसमें पुष्प और फल ही लग सकते हैं।

''उसी प्रकार धर्म भी मनुष्य जीवन का मूलाधार है, जड़ है; जिससे मनुष्य को ओजस्, तेजस्, वर्चस्, सत्य, प्रेम, करुणा, संवेदना आदि के रूप में जीवन रस प्राप्त होता है। इस जीवन रस के सहारे ही मनुष्य का जीवन विशाल वृक्ष की भाँति ऊँचाई को, महानता को प्राप्त होता है। इस जीवन रस के अभाव में व्यक्ति आकृति से मनुष्य होकर भी प्रकृति से मनुष्य नहीं हो पाता है; क्योंकि वह मनुष्य तो है, पर उसमें मनुष्यता नहीं है। वह मनुष्य तो है, पर उसका स्वभाव उसका आचरण मनुष्योचित नहीं है। मनुष्य के रूप में दिखते हुए भी उसका व्यवहार, स्वभाव मनुष्य जैसा नहीं है। मनुष्यता के अभाव में मनुष्य अधर्म, अनीति, बुराई के मार्ग पर चल पड़ता है और स्वयं के साथ-साथ पूरे समाज के लिए दुःख, अशांति और पतन का कारण बनता है।''

स्वामी सत्यमदास जी फिर बोले—''मनुस्मृति में धर्म के 10 लक्षण बताए गए हैं। धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, शौच (स्वच्छता), इंद्रियों को वश में रखना, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना—ये धर्म के लक्षण हैं। अस्तु मनुष्य को जीवन में धैर्य रखना चाहिए। उसे अधीर नहीं होना चाहिए। धैर्य खो देने पर व्यक्ति बुराई की ओर प्रवृत्त हो जाता है।

''मनुष्य में दूसरों को क्षमा करने का गुण भी होना चाहिए। यदि कोई आपके प्रति की गई गलती के लिए क्षमा

माँगता है तो उसे क्षमा प्रदान करना चाहिए। जीवन में संयम का पालन आवश्यक है। व्यक्ति को हमेशा ईमानदारी की कमाई ही ग्रहण करना चाहिए। उसे पराये धन को मिट्टी के समान समझना चाहिए। चोरी से प्राप्त धन या वस्तु अंततः हमारे दुःख और बंधन के कारण बनते हैं। हमें शौच अर्थात स्वच्छता को प्राप्त करना चाहिए। यह शारीरिक, मानसिक व बाह्य पर्यावरण से जुड़ी हुई स्वच्छता है। हमें शारीरिक-मानसिक स्वच्छता हेतु साफ-सफाई एवं पौधारोपण करना चाहिए। इंद्रियों को वश में रखना भी आवश्यक है।''

वे आगे बोले—''हमें बुद्धि को पवित्र करने हेतु गायत्री मंत्रजप, यज्ञ, भगवद्ध्यान आदि नियमित रूप से करने चाहिए। हमें विद्या की प्राप्ति हेतु किसी ब्रह्मनिष्ठ गुरु से दीक्षा लेकर शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। हमें सदा सत्य बोलना चाहिए। भगवान को सत्यस्वरूप कहा गया है। इसलिए भगवान को सत्यनारायण भगवान भी कहा जाता है। सत्य के मार्ग पर चलने से ही व्यक्ति को सुख प्राप्त होता है। हाँ! प्रारंभ में सत्य पर चलने वाला व्यक्ति संघर्ष करता हुआ अवश्य दिखता है, पर अंततः जीत तो सत्य की ही होती है। सत्य परेशान हो सकता है, पर परास्त नहीं। इसलिए कहा गया है— **'सत्यमेव जयते'** अर्थात सत्य की ही विजय होती है।

''झूठ और बेईमानी के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति के मन में ग्लानि, भय, चिंता भरी हुई होती है, जिससे वह मानसिक बीमारियों का शिकार हो अस्वस्थ रहने लगता है। वह शारीरिक-मानसिक विकारों का शिकार होता है। उसका मनोबल, आत्मबल कमजोर होता है, जिससे उसे हर काम में असफलता मिलती है। उसे पल-पल अपने झूठ और बेईमानी के पकड़े जाने का भय सताता रहता है। इसलिए वह झूठ और बेईमानी से प्राप्त सुख के साधनों के होते हुए भी अंदर से दुःखी ही रहता है; जबकि सत्य के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति आत्मग्लानि व भय से मुक्त हमेशा हर्षित, प्रसन्नचित्त और आशावादी बना रहता है। फलस्वरूप वह जीवन में सर्वत्र सफल होता है।

''क्रोध न करना भी धर्म है। इसका आशय यह है कि हमें अकारण क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध से शारीरिक-मानसिक ऊर्जा का क्षरण होता है। क्रोध में उचित-अनुचित का ख्याल नहीं रहता, जिससे व्यक्ति को पछताना पड़ता है और घोर हानि उठानी पड़ती है। हाँ! किसी अनीति का प्रतिकार करना हो, किसी स्त्री की अस्मिता की रक्षा करनी हो, किसी व्यक्ति को किसी दुष्ट व्यक्ति के चंगुल से बचाना हो, देश के साथ विश्वासघात करने वाले दुश्मनों को सबक सिखाना हो तो वहाँ हमें क्रोध अवश्य ही करना चाहिए। ऐसा क्रोध सुरक्षा, सत्य की रक्षा एवं अहिंसा की रक्षा के लिए ही है। एक माता-पिता का बच्चों के प्रति क्रोध उन्हें हानि पहुँचाने के लिए नहीं, बल्कि उनके सुधार और भले के लिए ही सदैव होता है।

''धर्म का व्यावहारिक अर्थ कर्त्तव्य है। मानव होने के नाते मानव का जो कर्त्तव्य है, वही मानव धर्म है। एक आदर्श नागरिक होने के नाते अपने राष्ट्र के प्रति जो मनुष्य का कर्त्तव्य है, वही उसका राष्ट्रधर्म है। एक पुत्र, पिता, माता, भाई, बहन, पत्नी एवं अन्य रिश्तों के प्रति मनुष्य का जो कर्त्तव्य है, वह कर्त्तव्य ही मनुष्य का धर्म है। जैसे तपना ही सूर्य का स्वभाव है, सूर्य का धर्म है, बहना ही जल का धर्म है, शीतलता ही चंद्रमा का स्वभाव है, धर्म है; वैसे ही मनुष्यता ही मनुष्य का धर्म है।

''उसी प्रकार मनुष्य होकर जीवन के परम लक्ष्य, मोक्ष, मुक्ति व भगवत्प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना भी मनुष्य का धर्म है। अस्तु जो व्यक्ति धर्म को इस रूप में अपने जीवन में जीता है, उसे सुख प्राप्त होता है, पुण्य प्राप्त होता है और अंततः उसे मुक्ति, मोक्ष भी प्राप्त हो जाते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि भौतिक सुख, सांसारिक सुख पाने का स्रोत भी धर्म ही है और मोक्ष, मुक्ति, भगवत्प्राप्ति का मार्ग भी धर्म ही है। अतः प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह अपना जीवन धर्ममय बनाए।''

स्वामी सत्यमदास ने अभी पूर्व में पूछे गए प्रश्न का संपूर्ण समाधान दिया ही था कि तभी वहाँ बैठे एक अन्य सज्जन खड़े हुए और बोले—''महात्मन्! यह कैसे हो सकता है कि जो धर्म मोक्ष, मुक्ति, भगवत्प्राप्ति का कारण है, स्रोत है, वही धर्म भौतिक सुख, सांसारिक सुखों की प्राप्ति भी कराए? क्योंकि संसार और मोक्ष, भौतिक और आध्यात्मिक सुख तो परस्पर विरोधी हैं।''

तब स्वामी जी बोले—''वत्स! तुम्हारा सवाल अति उत्तम है, सारगर्भित है और प्रासंगिक भी। यह सत्य है कि संसार और मोक्ष परस्पर विरुद्ध हैं। अतः उनके कारण भी अलग-अलग होने चाहिए और दोनों के कारण अलग-अलग हैं भी। सांसारिक भौतिक सुखों का कारण धर्म के

पालन से प्राप्त शुभ भावरूप पुण्य है। धर्म के पालन से व्यक्ति को पुण्य प्राप्त होता है और उसी पुण्य से उसे सुख प्राप्त होता है। उसे सांसारिक-भौतिक सुखों की प्राप्ति होती है। शुभ कर्म करने से व्यक्ति को पुण्य प्राप्त होता है। दया, दान, सेवा, परोपकार, यज्ञ, क्षमा, सत्य आदि के करने से व्यक्ति को पुण्य प्राप्त होता है और उसी पुण्य से उसे भौतिक सुखों की प्राप्ति होती है।

''दूसरी ओर शुभ कर्म का परिणाम हमेशा सुफल, सुखद ही होता है और बुरे कर्म यानी हत्या, लूट, बेईमानी, असंयम, क्रोध, झूठ आदि कर्मों का परिणाम हमेशा दु:ख ही होता है तो संसार सुख, भौतिक सुख प्राप्त करने का कारण शुभ भावरूप पुण्य है तो वहीं मुक्ति का कारण वीतराग भावरूप शुद्ध भावरूप धर्म है। धर्म के पालन से व्यक्ति में वैराग्य भाव, वीतराग भाव पैदा होता है। वैराग्य भाव, वीतराग भाव के कारण व्यक्ति राग-द्वेष, सुख-दु:ख, मान-अपमान, आसक्ति, कर्म-संस्कार, कर्त्तापन की भावना आदि विविध प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है। फलस्वरूप उसके हृदय में भगवत्प्रीति बढ़ती जाती है, जिससे अंतत: उसे मुक्ति प्राप्त होती है, उसे भगवत्प्राप्ति होती है। अत: जहाँ धर्म का फल सांसारिक, भौतिक सुखों को बताया जाए, वहाँ धर्म का अर्थ शुभ भावरूप पुण्य जानना चाहिए और जहाँ धर्म को मुक्ति का कारण बताया जाए, वहाँ धर्म शब्द का अर्थ शुद्ध भावरूप वीतराग भाव जानना चाहिए।''

इस प्रकार धर्म की विशद व व्यावहारिक व्याख्या करते हुए स्वामी सत्यमदास जी ने अपनी वाणी को विराम दिया। वहाँ उपस्थित लोग धर्म की ऐसी व्याख्या सुनकर बड़े हर्षित हुए और अपने जीवन में धर्मपालन करने को प्रेरित भी। ❑

''बंधुवर पुष्प! लो सवेरा हुआ, माली इधर ही आ रहा है। अपनी सज्जनता, सौमनस्यता तथा उपकार की सजा भुगतने के लिए तैयार हो जाओ। तात! यदि मेरी सीख मानते और कठोरता व कुटिलता का आश्रय ग्रहण किए रहते तो आज यह नौबत नहीं आती।''— काँटे ने कहा। इस पर फूल कुछ बोला नहीं, उसकी स्थिति और भी मोहक हो उठी। माली आया, उसने फूल को तोड़ा और डलिया में रखा। काँटा दर्प में हँसा, माली की वृद्ध उँगलियों में चुभा और अहंकार में ऐंठ गया। माली उसे गालियाँ बकता हुआ वापस लौट गया।

समय बीता। एक दिन देव मंदिर में चढ़ाए उस फूल की सूखी काया को उठाकर कोई उसी वृक्ष की जड़ों के पास डाल गया। काँटे ने म्लानमुख सुमन को देखा तो हँसा और बोला—''कहो तात! अब तो समझ गए कि परोपकारी होना अपनी ही दुर्गति कराना है।''

फूल की आत्मा बोली—''बंधु, यह तुम्हारा अपना विश्वास है। शरीरों में चुभकर दूसरों की आत्मा को कष्ट पहुँचाने के पाप के अतिरिक्त तुम अपयश के भी भागी बने। अंत तो सभी का सुनिश्चित है, किंतु अपने प्राणों को देवत्व में परिणत करने और संसार को प्रसन्नता प्रदान करने का जो श्रेय मुझे मिला, तुम उससे सदैव के लिए वंचित रह गए। मैं हर दृष्टि से फायदे में हूँ और तुम घाटे में।''

मन:स्थिति की साध एवं समय का श्रेष्ठतम सदुपयोग

जीवन में सफलता के कई कारण हैं, इनमें सर्वोपरि है—समय का सदुपयोग। समय के एक-एक पल का सदुपयोग करते हुए कितनों ने न जाने कितनी बड़ी-बड़ी सफलताएँ अर्जित कीं। वहीं प्रतिभावान होते हुए भी समय का सही नियोजन न कर पाने के कारण न जाने कितने व्यक्ति जीवन में कुछ कह सकने योग्य सफलता हासिल नहीं कर पाए।

प्रस्तुत है व्यक्तित्व के चिंतन एवं व्यवहार से जुड़े ऐसे कारक जो समय की बरबादी का कारण बनते हैं, जो व्यक्ति को उसकी पूरी क्षमता के साथ आगे बढ़ने से रोकते हैं, जिनको साधते हुए समय का श्रेष्ठतम उपयोग किया जा सकता है।

उचित प्रेरणा के लिए अंतहीन प्रतीक्षा—समय की बरबादी का एक बड़ा कारण रहता है। हालाँकि किसी भी कार्य को करने के लिए आवश्यक प्रेरणा का होना आवश्यक होता है, तभी उत्साह के साथ उसका शुभारंभ हो पाता है और वह निष्कर्ष तक पहुँच पाता है, लेकिन हर कार्य के लिए ऐसी प्रेरणा का व सही मनोदशा का इंतजार करते रहा जाए तो जीवन में उत्कर्ष का मार्ग कठिन हो सकता है।

ऐसा इसलिए, क्योंकि कई तरह के कार्य विशेष रूप से कर्त्तव्य कर्म व्यक्ति को ईश्वर की इच्छा या परिवार एवं समाज के प्रति कर्त्तव्यभाव से भी करने पड़ते हैं, जिनमें प्रत्यक्ष कोई तात्कालिक लाभ न दिखने पर प्रेरणा नहीं उभर पाती। ऐसे कार्यों में आवश्यक प्रेरणा या मनोदशा की प्रतीक्षा नहीं की जा सकती, अन्यथा समय के पश्चात वे अपना औचित्य खो बैठते हैं; जबकि अभीष्ट लक्ष्य के प्रति उचित समय पर उठाया गया पग जीवन में सफलता एवं उत्कर्ष की मंजिल तक व्यक्ति को ले जाता है।

लोकभय या लोकलाज भी समय की बरबादी का एक बड़ा कारण बनता है कि लोग क्या कहेंगे— जिसके चलते व्यक्ति कोई कदम नहीं उठा पाते। कहावत प्रचलित है कि आप कुछ भी करें, लोगों का काम है कहना। इसलिए सिर्फ इसलिए हम समय पर आवश्यक पग नहीं उठा पा रहे कि लोग क्या कहेंगे, तो यह समझदारी व बहादुरी वाली बात नहीं।

कर्त्तव्यनिष्ठ अपनी अंत:प्रेरणा को ईश्वर की ध्वनि मानते हुए एकला ही अपनी मंजिल की ओर बढ़ा करते हैं, चाहे इसके लिए उन्हें पूरे विश्व का उपहास, विरोध या प्रताड़ना का सामना क्यों न करना पड़े। ऐसे ही अंत:प्रेरित लोग समय का सही सदुपयोग कर पाते हैं और देर-सवेर दुनिया के विरोध के स्वर भी अंतत: मंद पड़ जाते हैं बल्कि जब संसार को ऐसे नैष्ठिक कदमों के औचित्य का एहसास हो जाता है, तो वे स्वयं ही फिर उसे राह देते दिखते हैं।

सदा ही शिकायत भरी मन:स्थिति भी समय की बरबादी का कारण बनती है। अपनी विफलताओं के लिए दूसरों को जिम्मेदार मानना व अपनी गलती का एहसास न कर पाना, यह मन:स्थिति भी व्यक्ति को शिकायत से भरा बना देती है, ऐसे में व्यक्ति समय का सही सदुपयोग नहीं कर पाता, क्योंकि मन दूसरों में ही अटका रहता है। ऐसे गिले-शिकवे एवं शिकायतों से भरे मन से कोई बड़ा कार्य नहीं हो सकता। ऐसी मन:स्थिति परदोषारोपण एवं आत्मप्रवंचना में ही उलझी रह जाती है, जिस कारण बेशकीमती समय दूसरों की निंदा, आलोचना, चुगली एवं वाद-प्रतिवाद में ही बीत जाता है।

पर्फेक्शनिज्म अर्थात पूर्णतावादी मानसिकता भी समय की बरबादी की ओर ले जाने वाला एक कारक है, क्योंकि इसके कारण व्यक्ति स्वयं से कुछ अधिक ही आशा-अपेक्षाएँ

लगाए रहता है, जो प्राय: पूरा नहीं हो पातीं और ऐसे में व्यक्ति स्वयं से गहरा असंतोष पाले बैठता है और दूसरों के प्रति भी गहरे मलाल की स्थिति में रहता है। इस मन:स्थिति में कोई व्यावहारिक योजना नहीं बन पाती, जो ठोस उपलब्धि को अंजाम दे सके, बल्कि कल्पना व योजना स्तर पर ही बातें उलझी रह जाती हैं।

सबको प्रसन्न करने का प्रयास, यह भी समय की बरबादी का कारण बनता है; क्योंकि व्यावहारिक रूप में सबको प्रसन्न नहीं किया जा सकता, क्योंकि सभी की अपनी आशा-अपेक्षाएँ एवं माँगें रहती हैं। लोग मूलत: अपने-अपने स्वार्थ एवं अहं से चालित होते हैं, जिसका प्राय: उन्हें स्वयं भी अधिक भान नहीं होता और वे अपने ही हिसाब से दुनिया को चलते हुए देखना चाहते हैं। ऐसे में हर व्यक्ति की इच्छाओं, कामनाओं व महत्त्वाकांक्षाओं के हिसाब से चलना व अपनी मनचाही मंजिल की ओर बढ़ना किसी भी व्यक्ति के लिए संभव नहीं होता।

जबकि जीवन के राजपथ पर अपने जीवन के औचित्य, समय की माँग, अपने स्वभाव व प्रकृति द्वारा निर्धारित स्वधर्म के अनुरूप आगे बढ़ना होता है। समाज के प्रति आवश्यक कर्त्तव्य को ध्यान में रखते हुए कार्य करना होता है न कि सबको प्रसन्न करते हुए। यदि मानक सत्य, धर्म, कर्त्तव्य व मानवता हों तो देर-सवेर सबके गिले-शिकवे भी दूर हो जाते हैं; क्योंकि ऐसा व्यक्ति अंतत: वास्तव में सबका हितचिंतक, मानवता का प्रहरी, समाज का सेवक व संस्कृति का संरक्षक सिद्ध होता है।

दूसरों से अपनी तुलना करना भी समय नष्ट करने का एक बड़ा कारक बनता है। जब व्यक्ति अंत:प्रेरित नहीं होता, तब वह दूसरों से अधिक प्रभावित रहता है और जाने-अनजाने में ही दूसरों से तुलना-कटाक्ष के कुचक्र में भी उलझता रहता है। ऐसे में या तो स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ मानने लगता है या दूसरों से अपने को कमतर पाकर हीनता के भाव से ग्रसित हो जाता है। दोनों ही मन:स्थिति उसके मानसिक संतुलन को डगमग कर समय की बरबादी का कारण बनती हैं; जबकि दूसरों से आवश्यक शिक्षा व प्रेरणा लेते हुए संतुलित मन:स्थिति के साथ आगे बढ़ना ही उचित रहता है।

एक ही गलती को बार-बार दोहराते रहना भी समय की बरबादी का एक बड़ा कारण बनता है; क्योंकि बार-बार एक ही गलती दोहराने से समय व ऊर्जा की अनावश्यक बरबादी होती है। इस कुचक्र में उलझने के कारण व्यक्ति हमेशा नए संकल्प, नई योजना, नए पुरुषार्थ करता हुआ प्रतीत होता है, लेकिन पहुँचता कहीं नहीं। बार-बार की विफलता उसके मन में असंतोष पैदा करती है, मन में नकारात्मक ग्रंथियों को जन्म देती है, जो व्यक्ति की क्षमता के लिए एक तरह से भँवर का कार्य करती है, जिसमें उलझे व्यक्ति के लिए समय की हमेशा ही कमी रहती है।

प्राथमिकताओं का अभाव भी समय की बरबादी का कारण बनता है, क्योंकि प्राथमिकताओं के स्पष्ट न होने के कारण व्यक्ति अनावश्यक कार्यों में उलझा रहता है और आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य अधूरे ही रह जाते हैं, जो प्रकारांतर में संकट की स्थिति पैदा करते हैं, जिससे जीवन तनाव व अवसाद से ग्रस्त हो जाता है। इसके साथ

आचरणो न्याययुक्तो यः स हि धर्म इति स्मृतः।

—महाभारत वन पर्व (207/77)

अर्थात जो आचरण न्याययुक्त है, वही निश्चित रूप से धर्म है।

असफलता का भय भी व्यक्ति को सार्थक प्रयास से वंचित रखता है व समय यों ही हाथ से निकलता रहता है और व्यक्ति खाली योजनाएँ बनाता रह जाता है और मन की प्रवंचना भय का सामना करने के बजाय दूसरे कार्यों में उलझाए रखती है।

इस तरह व्यक्ति अपने जीवन को नहीं जी पाता और समय यों ही बरबाद होता रहता है। सफलता के सपने, उत्कर्ष के ताने-बाने ख्यालों में ही रह जाते हैं। यदि कुछ उपलब्धियाँ हाथ आ भी जाती हैं, तो संतोषजनक नहीं होती हैं; क्योंकि व्यक्तित्व की पूरी क्षमताएँ उपरोक्त मन:स्थिति की भेंट चढ़ती रहती हैं। अत: इन कारकों पर ध्यान देते हुए, समय रहते इन पर कार्य करते हुए जीवन को अपने हिसाब से जिया जा सकता है और जीवन में सफलता एवं उत्कर्ष की अभीष्ट मंजिल तक पहुँचा जा सकता है। ❑

कैसे करें आत्मविकास

जीवन चुनौतियों का सामना करते हुए इन्हें अवसर में बदलने का नाम है, कम्फर्टजोन (सुविधापूर्ण क्षेत्र) से बाहर निकल कर जीवन की चुनौतियों को अंगीकार करते हुए आत्मविकास का नाम है। जीवन अपने भयों का सामना करते हुए, इन पर विजय पाते हुए, एक मनचाहे सार्थक-सफल जीवन का नाम है। जीवन छोटी-छोटी दुर्बलताओं पर विजय पाते हुए आत्मजय का नाम है। जीवन परिस्थितियों व अवसर का सामना करते हुए मनचाही सृष्टि की रचना करने का नाम है। निश्चित रूप में कार्य उतना सरल नहीं। बैठे-ठाले कुछ होने वाला नहीं। इसके लिए मैदान में उतरना ही पड़ता है। हर चुनौती से दो-दो हाथ करने का साहस बटोरना ही पड़ता है। भय का सामना करना पड़ता है।

सामान्यत: कोई भी सुविधापूर्ण क्षेत्र से बाहर नहीं निकलना चाहता। यह एक ऐसी आरामदायक स्थिति होती है, जहाँ आप सुकून महसूस करते हैं और इससे बाहर नहीं आना चाहते। उसमें व्यक्ति सुरक्षित अनुभव करता है, लेकिन इसके साथ जुड़ी हुई त्रासदियाँ भी कम नहीं। इसके दायरे में व्यक्ति को सुख-शांति व सुरक्षा का भ्रम होता है। एक छोटे से दायरे में व्यक्ति अधिक आत्मविश्वास का अनुभव करता है; क्योंकि वह सदा वही कार्य कर रहा होता है। इसलिए कम-से-कम खतरा रहता है और व्यक्ति ऊर्जा से भरपूर अनुभव करता है, जैसा कि एक दायरे में सिमटे लोग जीवन में अनुभव करते हैं। वस्तुत: जीवन एक ढर्रे पर चल रहा होता है।

सुविधापूर्ण क्षेत्र में इन आभासित लाभों के बीच जीवन अपनी पूर्ण संभावनाओं के साथ विकसित नहीं हो पाता है। एक सीमित दायरे में ही कौशल विकसित हो पाता है। इसमें आत्मतुष्टि का भाव रहता है, लेकिन साथ ही कोई खतरा नहीं होने से कोई बड़ा पुरस्कार भी नहीं मिल पाता, जिसकी व्यक्ति अचेतन मन से आशा-अपेक्षा रखता है। इसके साथ आत्मविश्वास की कमी तथा जीवन के प्रति नकारात्मक भाव विकसित होता है। जीवन का पूर्ण विकास न होने पर अंदर हताशा, निराशा का भाव भी सुलगता रहता है तथा जीवन की संभावनाओं की कलियों के पूरा न खिल पाने का मलाल भी रहता है। मनोविज्ञान की भाषा में व्यक्ति सेल्फ-एक्चुअलाइजेशन की मंजिल से वंचित अनुभव करता है तथा पूर्णता के बोध से दूर रहता है।

इससे बाहर निकलने के लिए सबसे पहले तो इस अनुभव की आवश्यकता होती है कि सुविधापूर्ण क्षेत्र किस तरह से अपने सर्वांगीण विकास में बाधक बना हुआ है। इस अनुभव के बाद ही इससे बाहर निकलने के प्रयास प्रारंभ होते हैं। जब तक व्यक्ति सुविधापूर्ण क्षेत्र की मोह-माया में ही संतुष्ट है, तो इससे बाहर निकलने का प्रश्न ही नहीं उठता, लेकिन आत्मनिरीक्षण के बाद इस आधार पर जब आत्मसुधार की आवश्यकता अनुभव होती है, तो फिर प्रयास प्रारंभ हो जाते हैं। इस दिशा में उठाए जा सकने वाले कुछ उपयोगी कदमों की चर्चा यहाँ की जा रही है।

सबसे पहले अपना लक्ष्य तय करें, जिसे अभी तक आपने प्राप्त नहीं किया है व जिसे आप पूरा करना चाहते हैं, इस दिशा में छोटे-छोटे कदम उठाएँ। उन कार्यों की एक सूची बनाएँ, जो आपको असहज बनाते हों। अब प्रत्येक दिन इनमें से कुछ को लें। स्वास्थ्य के संदर्भ में आहार के साथ ऐसा प्रयोग कर सकते हैं। यदि आहार संबंधी आदतें बिगड़ी हुई हैं, तो आहार के संबंध में आवश्यक परिवर्तन एवं सुधार भी कर सकते हैं। यदि आहार में राजसिक तत्त्व की प्रधानता रहती है, तो इसमें अपने स्वास्थ्यानुकूल सात्त्विक भोजन को शामिल कर सकते हैं।

इसी तरह शारीरिक श्रम एवं व्यायाम के संबंध में जहाँ आलस्य-प्रमादवश प्रयास शिथिल हों, वहाँ कुछ नया जोड़ सकते हैं और इन्हें नए स्तर तक ले जा सकते हैं, जो शरीर को अधिक सबल एवं स्वस्थ बनाते हों। एक सफल जीवन के लिए आवश्यक नए कौशल पर कार्य करते हुए अपने पेशेवर जीवन की सफलता में नया आयाम जोड़ सकते हैं, जो आपके आत्मविश्वास एवं जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करते हों। हर सप्ताह अपने अध्ययन में एक नई

पुस्तक जोड़ सकते हैं, किसी नए विषय पर कार्य कर सकते हैं, जिससे कि आप ढर्रे के बौद्धिक विकास से बाहर आ सकें। अपनी पसंदीदा पुस्तकों के लिए नित्य समय निर्धारित कर सकते हैं।

यदि जीवन ढर्रे पर चल रहा है, आवश्यक संतोष से रीता है, तो स्वयं से गहरे प्रश्न करें व स्वयं को चुनौती दें। अपनी दिनचर्या में कुछ नई रचनात्मक गतिविधियों को शामिल करें। कुछ पल ध्यान के लिए निकालें। शुभारंभ छोटे कार्य करने से करें। आत्मबोध-तत्त्वबोध साधना के साथ डायरी एवं कुछ रचनात्मक लेखन के अभ्यास को भी जोड़ सकते हैं।

अपने भावनात्मक विकास एवं सामाजिक दायरे को विकसित करने के लिए प्रतिदिन किसी अपरिचित व्यक्ति से बात प्रारंभ करें। मंच पर बोलने का अभ्यास करें। मालूम हो कि 77 प्रतिशत जनता को मंच पर बोलने के भय से ग्रस्त पाया गया है। यदि आप भी इस श्रेणी में शामिल हैं, तो इससे बाहर निकलने के लिए छोटे एवं साहसिक कदम उठाएँ। बोलते हुए अपना वीडियो रिकॉर्ड करें व इसे देखकर अपनी समीक्षा करें तथा सुधार के लिए आवश्यक अभ्यास भी करें। अपने तनाव और उद्विग्नता को साक्षी भाव से देखने का अभ्यास करें और अपने आप को सुविधापूर्ण क्षेत्र से बाहर निकलता हुआ अनुभव करें। सफल होने पर अपने आप को पुरस्कार दें।

इस तरह अपनी जड़ता को तोड़ते हुए इससे बाहर आने का प्रयास करें। अपने विश्वास को चुनौती दें, जो आपको सुविधापूर्ण क्षेत्र में जड़ता की स्थिति में रखे हुए है। ईमानदार मूल्यांकन करते हुए इससे बाहर निकलने का साहसिक कदम उठाएँ और जहाँ अटके हुए हैं, उससे उबरता हुआ अनुभव करें। इसके साथ दूसरों की उचित एवं वांछित प्रशंसा करें। अपनी रुचि का समुदाय खोजें व इसका हिस्सा बनें। इससे जुड़कर आपकी रचनात्मक प्रतिभा को उचित स्थान मिल सकेगा व सहज रूप में सुविधापूर्ण क्षेत्र से उबरने के द्वार भी खुल जाएँगे। अपने जीवन के सफल अनुभवों को अन्य लोगों से साझा करते हुए इस संदर्भ में एक नया उत्साहवर्द्धक आयाम जोड़ सकते हैं।

इस तरह सुविधापूर्ण क्षेत्र से उबरने की प्रक्रिया संपन्न होती है, जिसके चार क्रमिक चरण रहते हैं— सुविधापूर्ण क्षेत्र (कम्फर्ट जोन), भयक्षेत्र (फीयर जोन), शिक्षण क्षेत्र (लर्निंग जोन) और विकास क्षेत्र (ग्रोथ जोन)। पहले चरण में भय का सामना होता है, इसका सामना करते हुए आवश्यक सीख के साथ दूसरा चरण संपन्न होता है, ऐसे अनुभव से मिले ठोस शिक्षण की परिणति आत्मविकास के रूप में होती है। इस सबके साथ जीवन में एक नए विश्वास, उत्साह और संतुष्टि का संचार होता है।

इस तरह आत्मविकास सुविधापूर्ण क्षेत्र से बाहर निकलने पर ही होता है। राह के तनाव, दुविधा व असहजता से होकर ही इसका मार्ग जाता है। हर रोज कुछ ऐसे काम करने होते हैं, जो आपको भयभीत करते हों, असहज करते हों। बार-बार भय का सामना करते हुए आत्मनिर्माण का पथ प्रशस्त होता है। बिना इस प्रक्रिया से गुजरे सुधार, उपलब्धि और सफलता जैसे शब्द मायने खो देते हैं, खोखले प्रतीत होते हैं। इस तरह आज का श्रम, पुरुषार्थ और पसीना आपके कल के सफल, सार्थक जीवन को परिभाषित करता है और सुविधापूर्ण क्षेत्र के बाहर निकलकर एक सफल एवं सार्थक जीवन का शुभारंभ होता है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

आत्मज्ञान ही बंधन से मुक्ति का मार्ग है

एक व्यापारी सुदूर देश से अच्छी नस्ल के घोड़े खरीदकर अपने गंतव्य को जा रहा था, पर रात हो जाने के कारण वह उन घोड़ों के साथ एक बगीचे में रात्रि विश्राम करने को ठहर गया। सोने से पूर्व वह सभी घोड़ों को वृक्ष की डालियों से रस्सी के सहारे बाँधने लगा, पर संयोग से एक रस्सी कम पड़ गई। इस प्रकार एक घोड़े को छोड़कर बाकी सभी घोड़े रस्सी में बँध चुके थे। अब वह व्यापारी चिंतित हुआ कि रस्सी में बँधा न होने के कारण कहीं एक घोड़ा भाग न जाए।

संयोग से उसी बगीचे में रात्रि विश्राम करने को एक संत भी ठहरे हुए थे। उस व्यापारी को परेशान देख संत प्रवर ने उस व्यापारी से पूछा—"भला तुम क्यों परेशान हो? आधी रात होने को आ गई और अब तक तुम सोये नहीं। आखिर बात क्या है?" व्यापारी बोला— "महात्मन्! मैंने अपने सभी घोड़ों को तो बाँध दिया है, पर एक घोड़े को रस्सी के अभाव में अभी तक बाँध नहीं सका हूँ। इसलिए मुझे चिंता है कि यह घोड़ा कहीं भाग न जाए।"

संत प्रवर बोले—"इस घोड़े को भी तुम उसी तरह से बाँध दो, जैसे तुम अन्य घोड़ों को बाँधे हो।" वह बोला—"पर महात्मन् रस्सी तो बची ही नहीं है, फिर इस घोड़े को अन्य घोड़ों की तरह मैं बाँधूँ कैसे? यही तो समस्या है। यदि रस्सी होती तो मैं इसे कब का बाँध चुका होता।" संत प्रवर बोले—"रस्सी नहीं है तो क्या हुआ, तुम उस घोड़े को कल्पना की रस्सी से बाँध दो। तुम अब उस घोड़े के पास जाकर उसे बिना रस्सी के ही बाँधने का अभिनय करो।"

संत के कहे अनुसार उस व्यापारी ने वैसा ही किया। उसने घोड़े के पास जाकर उसके गले में काल्पनिक रस्सी बाँधने का नाटक किया, अभिनय किया और रस्सी के दूसरे छोर को पास के वृक्ष से बाँध दिया। ऐसा करते ही वह घोड़ा अन्य बँधे हुए घोड़ों की तरह बैठ गया। उसने यह मान लिया कि अब मैं भी रस्सी से बँध चुका हूँ।

सुबह हुई तो व्यापारी ने देखा कि वह घोड़ा वहीं बैठा है। चलते समय जब व्यापारी ने सभी घोड़ों को खोला तो सारे घोड़े खड़े हो गए, पर वह घोड़ा जिसे रस्सी के अभाव में काल्पनिक रस्सी से बाँधने का अभिनय किया गया था—वह नहीं उठा। व्यापारी उसे उठाने के लिए मारने लगा। तभी वहाँ संत प्रवर आए और बोले—"अरे, यह तुम क्या कर रहे हो? तुम इसे डंडे क्यों मार रहे हो?" "क्योंकि यह उठ नहीं रहा महात्मन्!"—व्यापारी ने कहा। तब संत प्रवर बोले—"अरे तुमने इसे रात्रि में बाँधा था, जब तक इसे खोलोगे नहीं, तब तक यह उठेगा कैसे?"

इस पर व्यापारी ने कहा—"महात्मन्! मैंने इसे असलियत में थोड़े ही बाँधा था। मैंने तो आपके कहे अनुसार बिना रस्सी के ही इसे काल्पनिक रस्सी से बाँधने का नाटक, अभिनय भर किया था।" इस पर संत प्रवर ने कहा—"जैसे रात्रि में तुमने इसे बिना रस्सी के ही बाँधने का नाटक, अभिनय किया था, वैसे ही अब इसे खोलने का नाटक, अभिनय भी करो।" व्यापारी ने वैसा ही किया।

उसने उस घोड़े के पास जाकर जैसे ही उसके गले में बँधी काल्पनिक रस्सी को खोलने का नाटक किया, वैसे ही वह घोड़ा उठ खड़ा हुआ। तब संत बोले—"इस घोड़े को यह नहीं पता था कि यह किसी काल्पनिक रस्सी से बँधा है। वह तो स्वयं को किसी वास्तविक रस्सी से बँधा हुआ माने बैठा था। इसलिए रस्सी खोलने का नाटक करते ही वह उठ खड़ा हुआ; क्योंकि उसने मान लिया कि अब मेरी रस्सी खोली जा चुकी है।"

वह व्यापारी अपने घोड़ों को लेकर अपने गंतव्य की ओर चल पड़ा। सुबह वहाँ पहुँचे उसके कई कर्मचारी भी उन सभी घोड़ों पर सवार हुए। व्यापारी भी उस आखिरी घोड़े पर सवार हुआ। व्यापारी के सवार होते ही वह घोड़ा, जो रात्रि में काल्पनिक रस्सी से बाँधा गया था; अब वायु

की गति से उड़ान भरने लगा और कुछ ही समय में वह व्यापारी अपने गंतव्य को पहुँच गया।

काल्पनिक रस्सी से बँधे हुए घोड़े का स्वयं को बँधा हुआ मानकर निष्क्रिय बैठे रहना और काल्पनिक रस्सी को असली रस्सी की तरह खोले जाने के नाटक से स्वयं को बंधनमुक्त मान खड़े होना और अगले ही पल अपनी द्रुत गति से हवा से बातें करने लग जाना आदि हमें यह बोध कराता है कि जैसे वह घोड़ा बिना रस्सी के अपने को बँधा हुआ मान रहा था, वैसे ही हम भी अपने आप को आत्मा के बजाय शरीर मान लेने के कारण माया, मोह, आसक्ति, स्मृति, संस्कार की रस्सियों से बँधा हुआ मानते हैं और बँधा हुआ पाते हैं।

परमात्मा का दिव्य अंश आत्मा होने के बावजूद भी स्वयं को मात्र शरीर मान लेने के कारण हम स्वयं को बंधन में बँधा हुआ मानते हैं। यह सच है कि हमने पूर्वजन्म में जो भी अच्छे-बुरे, पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ कर्म किए हैं उनकी स्मृतियाँ, उनके संस्कार हमारे अचेतन में अंकित हैं, हमारे चित्त में अंकित हैं, हमारे मन पर हावी हैं।

वर्तमान जीवन में भी हम फलासक्ति और कर्त्तापन की भावना से अच्छे-बुरे जो भी कर्म कर रहे हैं, वे भी हमारे चित्त में नित नए संस्कार सृजित कर रहे हैं। वे सभी संस्कार, स्मृतियाँ, आसक्तियाँ ही वे रस्सियाँ हैं, जिनसे हम स्वयं को बँधा हुआ मानते हैं, पर यहाँ प्रश्न यह है कि जो जीव ब्रह्म का अंश है, जो जीवात्मा परमात्मा का सनातन अंश है क्या उसे संस्कारों, आसक्तियों व स्मृतियों की रस्सियाँ बाँधें रह सकती हैं?

इस प्रश्न का उत्तर बस एक ही है और वह है— नहीं, नहीं और बिलकुल नहीं। क्यों? क्योंकि संस्कारों, स्मृतियों व आसक्तियों की रस्सियाँ हमें तभी तक बाँधे हुए हैं, जब तक हमें अपने वास्तविक सत्-चित्-आनंद स्वरूप का बोध नहीं हो पाया है।

हम तभी तक काल्पनिक रस्सियों से बँधे हैं, जब तक हमें यह बोध नहीं हो जाता कि मैं शरीर नहीं, मैं मन नहीं, मैं बुद्धि भी नहीं, मैं इंद्रियाँ भी नहीं, बल्कि मैं तो नित्य मुक्त आत्मा हूँ। मैं परमात्मा का सनातन अंश आत्मा हूँ।

जैसा कि गीताकार ने गीता (15.7) में कहा है— **'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'** अर्थात भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है, पर आत्मबोध के अभाव में हम अज्ञानतावश, अविद्यावश, चित्त के संस्कारों के प्रभाव में आकर स्वयं को शरीर, मन, बुद्धि और इंद्रियाँ माने बैठे हैं और तदनुरूप क्रियाकलाप में लिप्त हैं।

जीवात्मा ने स्वयं को आत्मा से नहीं, बल्कि शरीर से, मन से, बुद्धि से, इंद्रियों से संबद्ध व आबद्ध कर लिया है। वह वस्तुतः आत्मा है, पर स्वयं को काल्पनिक रूप से शरीर माने बैठा है, इसलिए वह बंधन में है, पर यह बंधन वास्तविक नहीं, काल्पनिक है; क्योंकि यह काल्पनिक बंधन हमारे मन ने ही हमारे लिए रचा है।

मन से रचा गया बंधन अदृश्य भले ही हो, पर वह है बड़ा ही बलशाली, बड़ा ही प्रभावशाली। मन के इसी बंधन में जीवात्मा न जाने कितने जन्मों तक स्वयं को बँधा हुआ मानता है और जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है। वैसे ही, जैसे असलियत में रस्सी से बँधे हुए न होने पर भी व्यापारी का वह घोड़ा स्वयं को किसी वास्तविक रस्सी से बँधा हुआ मानकर चुपचाप और निष्क्रिय बैठा रहा।

जब तक जीवात्मा जीवभाव से संबद्ध है, तब तक उसकी मुक्ति कैसे संभव है? जब तक जीवात्मा जीवभाव, देहभाव से आबद्ध है, संबद्ध है, तब तक वह जन्म-मरणरूपी संसार चक्र से भी कैसे निवृत्त हो सकता है? साक्षी, निर्गुण, अक्रिय उस आत्मा में बुद्धि के भ्रम से ही जीवभाव की प्राप्ति हुई है, जो कि वास्तविक नहीं है, पर उस अवास्तविक, अकाल्पनिक की सत्ता तभी तक है, जब तक जीवात्मा में प्रमादवश मिथ्या ज्ञान से प्रकट हुई जीवभाव, देहभाव की सत्ता है, पर जीवात्मा में, आत्मा में जीवभाव, देहभाव की समाप्ति हो कैसे? निवृत्ति हो कैसे?

शरीर मन और बुद्धि के साथ आत्मा का संबंध मिथ्याज्ञान के कारण ही है अस्तु जीवात्मा में, आत्मा में जीवभाव, देहभाव की निवृत्ति, ठीक-ठीक ज्ञान हो जाने से ही हो सकती है और अन्य किसी प्रकार से नहीं। आचार्य शंकरकृत 'विवेकचूड़ामणि' (204) के अनुसार ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान

है। अत: ब्रह्मात्मैक्यज्ञान हो जाने से, जीवभाव की निवृत्ति हो जाती है।

जीवभाव की निवृत्ति होते ही चित्त में समाहित संस्कारों की स्मृतियाँ, आसक्तियाँ मिट जाती हैं और चित्त निर्मल हो जाता है। चित्त के जिन संस्कारों व स्मृतियों के प्रभाव में आकर जीवात्मा स्वयं को रस्सी से बँधा हुआ मानता था, उससे वह पूर्णत: मुक्त हो जाता है। स्वयं को शरीर से बँधा होने का उसका भ्रम मिट जाता है। संस्कारों के प्रभाव में आकर जीवात्मा अज्ञानतावश स्वयं को शरीर मानता हुआ चला आ रहा था और तदनुरूप क्रियाकलाप करता चला आ रहा था, उससे वह पूर्णत: मुक्त हो जाता है।

जीव और ब्रह्म की एकता की अनुभूति होते ही जीवात्मा को अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात परमात्मा का दिव्य अंश होने की अनुभूति होने लगती है। जैसे अँधेरे में रस्सी को देखकर साँप होने का भ्रम होता है, पर भ्रम के नाश होने पर, अँधेरे के नाश होने पर वह रस्सी सर्प प्रतीत नहीं होती, वैसे ही जीव और ब्रह्म की एकता की अनुभूति होते ही आत्मा और ब्रह्म की एकता का ज्ञान होते ही जीवात्मा जीवभाव, देहभाव के बंधन से मुक्त हो जाता है।

तब स्वयं को देह मानने के उसके भ्रम का सदा-सदा के लिए नाश हो जाता है और उसी पल वह बंधनमुक्त और आनंदित हो उठता है। वह भी द्रुतगति से अपने आत्मलोक में, परमात्मलोक में, ऊँची-ऊँची उड़ानें भरने लगता है। वह कर्मबंधन से मुक्त होकर, काल्पनिक बंधन से मुक्त होकर सर्वदा आनंदित रहने लगता है। उसे हनुमान की तरह अपनी सारी शक्तियों का, अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण हो आता है और वह हनुमान की तरह पर्वत उखाड़ लाने, समुद्र लाँघने, लंका विध्वंस करने जैसे बड़े-बड़े पुरुषार्थ करने लगता है। वह प्रभुकार्य में स्वयं को पूर्णत: समर्पित करने लगता है।

यह सब तभी संभव हो पाता है, जब उसे जीव और ब्रह्म, ब्रह्म और आत्मा की एकता की अनुभूति हो पाती है, जब उसे ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान होता है। जीवात्मा को जीव और ब्रह्म, ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान अथवा अनुभूति कब और कैसे होती है? जब जीवात्मा नित्य निरंतर धैर्यपूर्वक अपनी आत्मा में, अपने हृदय में निराकार, ज्योतिरूप परमात्मा का ध्यान करता जाता है, तभी उसे ब्रह्म और आत्मा की एकता की अनुभूति होती है, तभी उसे ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान होता है।

यदि हम भी बंधनमुक्त हो आनंद के आकाश में ऊँची उड़ान भरना चाहते हैं, आनंद में ही चलना-फिरना, सोना-जागना, हँसना, बोलना, खेलना और समस्त कर्त्तव्य कर्म करते रहना चाहते हैं तो यह मार्ग हमारे लिए भी सुलभ है, हमारे लिए भी खुला है। मुक्ति का यह मार्ग, आनंद का, आत्मबोध का यह मार्ग हम सभी के लिए भी खुला है और हमारी प्रतीक्षा कर रहा है और अपने पथ पर चलने को हम सभी साधकों का आह्वान भी कर रहा है। ❑

कलकत्ते के प्रेसीडेंसी कॉलेज में एक भारतीय छात्र को बमुश्किल दाखिला मिला था। उस पर भी अँगरेजी के प्रोफेसर का व्यवहार यह था कि वह बात-बात में भारतीयों को अपमान भरे शब्द कहा करता था। अभी तक कोई विरोध करने वाला था नहीं। जब भारतीय छात्र का प्रवेश हो गया तो भी प्रोफेसर ने पुराना रवैया बदला नहीं। आदतन एक दिन जैसे ही उन्होंने भारतीयों के प्रति अपमानजनक शब्द कहे तो उस भारतीय युवक ने यह जानते हुए भी कि वह कॉलेज से निष्कासित किया जा सकता है, प्रोफेसर साहब के गाल पर तमाचा जड़ दिया। कॉलेज से उसे निकाल दिया गया, पर उस भारतीय युवक ने कभी अन्याय के आगे सिर नहीं झुकाया। वह युवक श्री सुभाषचंद्र बोस थे। उसके बाद प्रेसीडेंसी कॉलेज में स्वत: ही भारतीयों की निंदा बंद हो गई। वस्तुत: अनीति को पनपने न दिया जाए, तो वह नष्ट होती ही है।

यथार्थ की कसौटी पर विश्वास

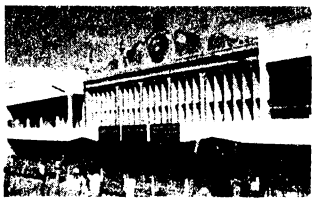

विगत अंक में आपने पढ़ा कि कि ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की स्थापना के संदर्भ में पूज्य गुरुदेव ने वर्षों पूर्व ही अपने सहयोगियों एवं सहचरों के माध्यम से आवश्यक तैयारियाँ आरंभ करा दी थीं। संस्थान को स्वरूप देने में तीन महत्त्वपूर्ण आधारों में एक भाग प्रयोगशाला, योग, स्वास्थ्य, साधना और गुह्य प्रयोगों के स्थूलजगत् पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन का था तो वहीं दूसरा भाग गायत्री के चौबीस स्वरूपों की स्थापना—चौबीस देवशक्तियों की स्थापना का था। तीसरे भाग में संस्थान में शोध ग्रंथालय की प्रतिष्ठापना भी सम्मिलित थी। पूज्यवर के मार्गदर्शन में सुनिश्चित व सुनियोजित रीति से ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान को आकार दिए जाने में श्रद्धेय डॉ0 साहब को शोध संबंधित ग्रंथों के संकलन से लेकर वैज्ञानिक प्रयोगों में उपयोग किए जाने वाले उपकरणों की यथायोग्य व्यवस्था का कार्यभार सौंपा गया था, जिसे वे अपनी समर्थ गुरुसत्ता के कुशल मार्गदर्शन में भली प्रकार संपन्न कर रहे थे। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

अवधूत का सहयोग

ग्रंथों की खोज के समय कई बार लगा कि सूक्ष्म और दिव्यशक्तियों ने जैसे काम पहले ही करके रख दिया है। वे निमित्त मात्र बने हुए हैं। लेकिन निमित्त बनने के लिए भी तो पात्रता चाहिए। मन में यह विचार चल ही रहा था वाराणसी के असीघाट चौराहे पर पुस्तकों की अभीष्ट दुकान ढूँढ़ रहे डॉक्टर साहब को सूक्ष्म आवाज सुनाई दी, 'वह पात्रता भी पुरुषार्थ से नहीं मिलती है। जिसे निमित्त बनाना हो ऋषिसत्ताएँ उन पर पात्रता भी बरसा देती हैं।'

आवाज की दिशा में देखा तो एक अवधूत साधु का छायाशरीर दिखाई दिया। छायाशरीर अर्थात आकृति तो स्पष्ट दिखाई दे रही थी, लेकिन स्वरूप पारदर्शी था। श्वेत धवल केश और लंबी दाढ़ी-मूँछ वाले उस अवधूत ने डॉक्टर साहब को अपनी ओर देखते हुए पाकर अवधूत खिल-खिलाकर हँस दिया। फिर बोला—''मन में पात्रता का विचार आना भी अध्यात्म जगत् में अनुचित है बालक! सब गुरु की कृपा समझो।''

इतना संबोधित कर उस अवधूत ने पीछे वाली गली की ओर इशारा किया और कहा—''इस दिशा में चले जाओ। गली पार कर दाहिनी ओर मुड़ना। वहाँ से दस घर छोड़कर ग्यारहवें घर में प्रवेश करना। बाहर से वह निवास दिखाई देता है, लेकिन वास्तव में वह शिवालय है। उस शिवालय में तुम्हें वह कोश मिलेगा, जिसकी खोज में यहाँ घूम रहे हो।'' गिनती के पाँच वाक्य बोलकर वह अवधूत लुप्त हो गया। डॉक्टर साहब उस बाबा की इंगित दिशा और पहचान में गए। शिवालय में पहुँचे। शिवालय में एक वृद्ध उपासक बैठे हुए थे। लगा वर्षों से यहीं रहते हों।

डॉक्टर साहब को देखकर उपासक उठे, अभिवादन किया और उन्हें एक कोठरी में ले गए। उस कोठरी में कुछ संदूकचियाँ रखी हुई थीं। उन्हें खोलकर बताया तो देखा मोटे पीले कागजों पर काली स्याही से लिखी साठ-सत्तर पुरानी पुस्तकें रखी हुई हैं। उपासक ने वह संदूकची डॉक्टर साहब को सौंपी और कहा—''मेरा काम पूरा हुआ। इन्हें आपके लिए ही सँभालकर रखा था। जिनके लिए इन ग्रंथों को तलाश रहे हैं, उन तक पहुँचाना अब आपकी जिम्मेदारी है।''

अभीष्ट पुस्तकों की तलाश के दौरान इस तरह के कई अनुभव हुए। मद्रास (अब यही चेन्नई) के अड्यार इलाके में, जहाँ थियोसोफिकल सोसायटी का मुख्यालय है डॉक्टर साहब को मैडम ब्लावट्स्की एनीबीसेंट, लेडबीटर आदि विद्वानों और साधकों के रहस्यमय अनुभवों से पूरित पुस्तकों की सूचना मिली थी। अड्यार स्थित केंद्र पर पहुँचे तो पता चला कि जो सूची लेकर आए थे, उसमें से आधी से ज्यादा

किताबें तो है ही नहीं। मुख्यालय के सभी विभागों, साधकों और अधिकारियों से संपर्क किया। कोई लाभ नहीं हुआ।

जब वे निराश और थके होकर मुख्यालय के पार्क में एक बेंच पर बैठे वापस लौटने के बारे में सोच रहे थे तो एक गेरूआ वस्त्रधारी व्यक्ति ने उन्हें हैलो कहा। उस व्यक्ति के वस्त्र गेरूआ रंग के थे, पर वह संन्यासी नहीं लग रहा था। उस व्यक्ति ने अपना परिचय रामकृष्ण मिशन के स्वामी रंगनाथानंद के रूप में दिया और अड्यार के पास विले पार्ले रोड पर रह रहे एक बुजुर्ग थियोसाफिस्ट का पता दिया। कहा कि वह व्यक्ति आपकी मदद कर सकता है।

स्वामी रंगनाथानंद तब रामकृष्ण मिशन हैदराबाद के प्रमुख थे। उनसे हुई बातचीत में गुरुदेव का जिक्र आया। स्वामी जी ने गुरुदेव का सम्मान से उल्लेख किया। कहा कि आपको समय हो तो हमारी सभा में चलिए। आचार्यश्री ने अद्वैत वेदांत पर जितना काम किया है, अद्‌भुत है। आप मठ के संन्यासियों को उस बारे में बताइए। डॉक्टर साहब ने फिर कभी आने की बात कही और स्वामी जी को प्रणाम कर उनके बताए पते पर चल दिए।

वहाँ स्वामी रंगनाथानंद द्वारा बताए गए बुजुर्ग व्यक्ति से भेंट हुई। उस व्यक्ति ने डॉक्टर साहब से इस तरह व्यवहार किया। जैसे उनके आने के बारे में पहले से पता हो। फिर उनके हाथ की सूची लेकर एक नजर डाली और उस कमरे की दो अलमारियों को खोला। देखा उनमें अभिलषित पुस्तकें सिलसिलेबार ढंग से रखी थीं। उपासक ने कहा ये आपके लिए हैं। डॉक्टर साहब ने देखा, ये वही पुस्तकें थीं, जो मद्रास में कहीं नहीं मिल रही थीं। यहीं पर परमपूज्य गुरुदेव द्वारा रचित संपूर्ण आर्ष साहित्य देखने का अवसर मिला, जो कि एक सुखद सुयोग था।

पुस्तकें खरीदने, जुटाने का सिलसिला निरंतर चलता रहा। शांतिकुंज लाकर गुरुदेव के सामने रखने और सुबह उन्हें उठाकर वापस ले जाने, पुस्तकालय के अनुसार व्यवस्थित करने में जरा भी ढील नहीं आई। गुरुदेव उन पुस्तकों को देखने और पढ़ने और उपयोगी अंशों पर निशान लगाकर वापस सौंप देते। इस प्रक्रिया में कभी कदा विचित्र अनुभव हुए। एक अनुभव का उल्लेख जरूरी होगा। मुंबई और पूना से उस समय कोई छह सौ पुस्तकें लाई गईं। डॉक्टर साहब ने सिर्फ हिंदी की पुस्तकें गुरुदेव के सामने रखीं और अँगरेजी तथा मराठी की पुस्तकें वापस ले जाने लगे। गुरुदेव ने उन्हें रोका और कहा कि इन किताबों को कहाँ ले जा रहे हो। डॉक्टर साहब ने कहा—"आपके लिए हिंदी की और संस्कृत की पुस्तकें रख दी हैं। दूसरी भाषाओं की पुस्तक शायद आप नहीं पढ़ना चाहें।" गुरुदेव ने कहा—"इन्हें भी देखूँगा। यहीं रख दो। सुबह सभी पुस्तकें एक साथ ले जाना।"

किताबें गुरुदेव के पास छोड़ दी गईं। सुबह डॉक्टर साहब उन्हें वापस लेने गए तो देखा साठ पुस्तकें एक तरफ रखी हुई थीं। अँगरेजी और मराठी की पुस्तकें भी देखी जा चुकी थीं और उनके अंशों पर भी हिंदी तथा संस्कृत की पुस्तकों की तरह निशान लगाए जा चुके थे। अलग रखी गई पुस्तकों के बारे में गुरुदेव ने कहा कि इनसे कोई काम की सामग्री नहीं मिली है। फिर भी इन्हें अपने विषयों की पुस्तकों के साथ रखना।

प्रयोगशाला के लिए यंत्र

गुरुदेव ने चर्चाओं में, शांतिकुंज के शिविरों में चलने वाले व्याख्यानों और पत्रिकाओं में शोध संस्थान का उद्‌देश्य कई बार स्पष्ट किया था। उन उद्‌बोधनों के अनुसार उद्‌देश्य अध्यात्म तत्त्वज्ञान के दार्शनिक और प्रयोगात्मक दोनों ही पक्षों का जिम्मा सँभालने वाला तंत्र खड़ा करना था। इस विषय में जो भी जानकारी विचार और तथ्य जहाँ कहीं भी उपलब्ध हैं, उन्हें जुटाना पहला कदम था। दूसरे चरण में अध्यात्म दर्शन और मान्यताओं का प्रत्यक्ष परीक्षण किया जाना था।

इस उद्‌देश्य के लिए प्रयोगशाला की व्यवस्था, जिसमें यज्ञ चिकित्सा, उपासना के विभिन्न पक्षों और उसके प्रभावों का अध्ययन तथा योग और तंत्र के विभिन्न प्रयोगों, विधियों का विश्लेषण शामिल था। प्रयोगशाला के लिए गुरुदेव ने पहले चरण में चौबीस यंत्रों की एक सूची नोट कराई। इन यंत्रों से साधना-उपासना के शरीर, मन और वातावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का परीक्षण आकलन किया जाना था। करीब तीन महीने के प्रयत्नों से जो मशीनें जुटाई गईं, ब्रह्मवर्चस संस्थान में लगाई गईं उनसे भवन एक विराट प्रयोगशाला की तरह लगने लगा था। योग, मंत्र और तंत्र के विश्लेषण, परीक्षण प्रयोग के लिए भारत में बने हुए उपकरणों को प्राथमिकता दी गई। कुछेक उपकरण ही बाहरी देशों से मँगाए गए। लगाए गए उपकरणों में इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम (ई.सी.जी.) जिसके जरिए हृदय की गति, लय और विद्युत

तरंगों को मापा जाता है, उसके साथ जुड़ा आटो रिकार्डर, हार्ट रेट मीटर तथा कार्डियोस्कोप यंत्र भी था। साधना कक्ष कार्डियोलॉजी कक्ष में ही बनाया गया था, क्योंकि किसी भी प्रयोग अभ्यास का पहला प्रभाव हृदय पर ही पड़ता है। इन मशीनों की खरीद के समय वीरेश्वर जी प्राय: साथ होते थे। उपकरणों की खोज के लिए जगह-जगह भटकना पड़ता। मशीनें भारी भी होतीं और हलकी भी। कुछ तो इतनी भारी कि कुली भी उन्हें उठाने से इनकार कर देते। उस हालत में वीरेश्वर जी और डॉक्टर साहब भी कुली के स्थान पर जुटते।

प्राणायाम तथा उससे जुड़े अभ्यासों को प्रारंभिक जाँच के लिए वायटेलोग्राफ, पीएच मीटर, ब्लड गैस एनालाइजर पल्मोनरी कक्ष में लगाए गए। शरीर की चयापचय क्रियाओं को परखने के लिए बीएमआर मशीन और यज्ञ की ऊष्मा, धूम तथा प्रक्रियाओं का प्रभाव जाँचने के लिए कैलोरोमीटर, क्रोमेटोग्राफ, पॉलीग्राफ, इएमजी यंत्रों की व्यवस्था की गई। प्रयोग परीक्षण में लगने वाली ऊर्जा की व्यवस्था सूर्य के ताप और धूम से की जानी थी। इसके लिए सौर ऊर्जा का संग्रह और वितरण संचालक वाले यंत्रों की व्यवस्था की गई।

संस्थान के लिए इन उपकरणों की व्यवस्था के समय कुछ कार्यकर्त्ताओं को लगा कि गुरुदेव को इन यंत्रों के बारे में बता देना चाहिए। हृदय, मस्तिष्क, रक्त परिवहन और मस्तिष्कीय तरंगों के साथ मांसपेशियों के आकुंचन- संकुचन जाँचने वाले यंत्रों की सूची बनाने में ज्यादा देर नहीं लगी। व्यवस्था में जुटे परिजन इन मशीनों के बारे में बताना शुरू करते, इससे पहले ही गुरुदेव ने चौबीस मशीनों की एक सूची थमा दी। उसमें मशीनों के नाम, उनके द्वारा संपन्न होने वाली जाँच, मशीनें मिलने का पता और संभावित मूल्य आदि की जानकारी चार-पाँच पन्नों में लिखी हुई थी। सूची देखकर परिजन चकित रह गए, लेकिन थोड़ी ही देर में सहज भी हो गए। कुछ मन-ही-मन सकुचाए भी कि अपनी मार्गदर्शक सत्ता की क्षमताओं को आँकने में चूक क्यों हो जाती है? इस तरह की ग्लानि शोध संस्थान में बनी टीम के कुछ नए सदस्यों को ही हुई। (क्रमश:)

अपने सुख-साधन जुटाने की फुरसत किसे है? विलासिता की सामग्री जहर-सी लगती है, विनोद और आराम के साधन जुटाने की बात कभी सामने आई तो आत्मग्लानि ने उस क्षुद्रता को धिक्कारा, जो मरणासन्न रोगियों के प्राण बचा सकने में समर्थ पानी के एक गिलास को अपने पैर धोने की विडंबना में बिखेरने के लिए ललचाती है। भूख से तड़पते प्राण त्यागने की स्थिति में पड़े हुए बालकों के मुख में जाने वाला ग्रास छीनकर माता कैसे अपना भरा पेट और भरे? दरद से कराहते बालक से मुँह मोड़कर पिता कैसे ताश-शतरंज का साज सजाए? ऐसा कोई निष्ठुर ही कर सकता है। आत्मवत् सर्वभूतेषु की संवेदना जैसे ही प्रखर हुई, निष्ठुरता उसी में गल-जलकर नष्ट हो गई। जी में केवल करुणा ही शेष रह गई, वही अब तक जीवन के इस अंतिम अध्याय तक यथावत् बनी हुई है। उसमें रत्ती भर भी कमी नहीं हुई, बस, दिन-दिन बढ़ोत्तरी ही होती गई।

—परमपूज्य गुरुदेव

बदलती जलवायु के प्रभाव

जलवायु असंतुलन से आज पर्यावरण बुरी तरह प्रभावित है। देश में जिन राज्यों में बरसात होती है, वहाँ अतिवृष्टि के कारण जनजीवन बुरी तरह से ठप हो जाता है और जहाँ बरसात नहीं होती है या कम होती है, वहाँ सूखे के हालात पैदा होते हैं। कहीं-कहीं यह बरसात इतनी भी नहीं होती है कि फसलों की न्यूनतम जरूरत को पूरी कर सके।

जाहिर है कि मौसम और खासकर मानसून भी बुरी तरह से जनता के अधिकांश तबकों पर किसी-न-किसी रूप में नकारात्मक असर डालता है और हमारे पास ऐसी कोई योजना नहीं है, जो बरसाती पानी के अधिकतम उपयोग के लिए उसका संचय करने को बढ़ावा दे सके। कुछ लोगों का मानना है कि कम या अधिक बरसात भी ग्लोबल वार्मिंग का ही नतीजा है।

ग्लोबल वार्मिंग समूची दुनिया के लिए आज एक गंभीर समस्या है। इसमें दो राय नहीं कि दुनिया के देशों और उनके नेतृत्व द्वारा इस समस्या से निपटने की दिशा में अनेकानेक प्रयास किए गए, व्यापक स्तर पर सभा-सम्मेलन इसका जीता-जागता प्रमाण हैं। बहरहाल, मौजूदा हालात समस्या की भयावहता की ओर इशारा कर रहे हैं; क्योंकि जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से निपटने की लाख कोशिशों के बावजूद धरती का तापमान लगातार बढ़ रहा है। धरती के तापमान में बढ़ोत्तरी का सबसे अधिक दुष्प्रभाव दक्षिण एशिया के देशों खासकर भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश पर पड़ता है।

देखा जाए तो इन्हीं तीन देशों में दुनिया के 20 फीसद से अधिक गरीब रहते हैं, जो सीधेतौर पर इस आपदा का मुकाबला कर पाने में अक्षम हैं। मैसाच्युसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के वैज्ञानिकों की मानें तो धरती के तापमान में बढ़ोत्तरी की अवस्था भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश के लिए अधिक चिंताजनक है। कारण इन देशों में अधिकांश आबादी के हिस्से का कृषिकार्यों से जुड़ा होना है; क्योंकि यह सीधे-सीधे सूर्य से प्रभावित होते हैं। इस वजह से उन देशों, जहाँ के लोग कृषिकार्यों से दूर कृत्रिम वातावरण में रहते हैं, की तुलना में पाकिस्तान और बांग्लादेश के कृषि-उत्पादन पर जलवायु-परिवर्तन से नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इस संकट से पार पाना इनके लिए मुश्किल हो जाएगा।

यही नहीं मानवीय गतिविधियों के कारण होने वाले कार्बन उत्सर्जन से चावल, गेहूँ और अन्य मुख्य अनाजों की पोषकता में कमी आने का खतरा मँडरा रहा है। ऐसी स्थिति में दुनिया की बहुत बड़ी आबादी प्रोटीन की कमी से जूझेगी। वैज्ञानिकों ने चेताया है कि कार्बन- डाइऑक्साड के उत्सर्जन का स्तर आने वाले सालों में इसी तरह बढ़ता रहा तो साल 2050 तक दुनिया के 18 देशों की आबादी के भोजन में मौजूद प्रोटीन में 5 फीसदी की कमी हो सकती है।

अमेरिका के हार्वर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ के अध्ययन के अनुसार वातावरण में कार्बन- डाइऑक्साइड के लगातार बढ़ते स्तर के कारण दुनिया में 15 करोड़ अतिरिक्त लोगों में प्रोटीन की कमी के खतरे की आशंका को नकारा नहीं जा सकता है। व्यापक स्तर पर दुनिया की तकरीबन 76 फीसद आबादी प्रोटीन की जरूरतों को फसलों से ही पूरा करती है। फिर जब फसलों पर ही खतरा मँडरा रहा हो, उस स्थिति में आबादी के लिए प्रोटीन की उम्मीद बेमानी ही प्रतीत होती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि बाढ़ और सूखे के साथ तापमान में बढ़ोत्तरी को भी जलवायु-परिवर्तन से अलग करके नहीं देखा जा सकता है।

कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि भारत में किसानों की आत्महत्याओं के पीछे जलवायु-परिवर्तन एक अहम वजह है। उनकी मानें तो फसल तैयार होने के दौरान यदि तापमान में एक डिगरी सेल्सियस की बढ़ोत्तरी होती है तो देश में 65 किसान आत्महत्या करते हैं और यदि तापमान पाँच डिगरी बढ़ जाता है, तो यह आँकड़ा पाँच गुना और बढ़ जाता है। ऐसी परिस्थितियाँ ही किसानों को आत्महत्या के लिए विवश करती हैं। समूची दुनिया में

73 फीसद आत्महत्या की घटनाएँ विकासशील देशों में होती हैं। इनमें 20 फीसदी भारत में ही होती हैं।

हमारे देश में हर साल एक लाख 30 हजार से अधिक आत्महत्याएँ होती हैं। सन् 1980 के मुकाबले देश में खुदकुशी की दर दुगनी से भी ज्यादा हो गई है। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि अगर 2050 तक तापमान में तीन डिगरी की बढ़ोत्तरी हुई, जिसकी आशंका ज्यादा है, तो आत्महत्या के मामले बढ़ेंगे, इस सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता। इसलिए अब हाथ- पर-हाथ रखकर बैठने की नहीं, सचेत होने की जरूरत है। इसमें दो राय नहीं कि जलवायु-परिवर्तन की समस्या ने आज के दौर में भयानक रूप अख्तियार कर लिया है। इसका मुकाबला आसान नहीं है। इसके लिए हरेक को कार्बन-उत्सर्जन में कमी लाने के प्रयास करने होंगे।

इस संदर्भ में सरकारी नीतियाँ भी कम परेशान करने वाली नहीं हैं। वादे जो भी किए गए हों या कुछ राज्यों में कृषि लोन आदि माफ भी किए गए हों, जमीनी हालात ये हैं कि खेती संबंधी एक समग्र और दूरगामी नीति का बुरी तरह अभाव है। उल्लेखनीय है कि किसानों की माँगें अत्यंत सीमित हैं और गिनी-चुनी हैं, मसलन खाद्य, पानी और बिजली सस्ती मिलने के साथ उत्पादन के न्यूनतम मूल्य तय किए जाएँ। यही नहीं हो रहा है। तमाम आश्वासनों के बावजूद सरकार ने विभिन्न फसलों के न्यूनतम दाम तय करने को प्राथमिकता देने की दिशा में अभी तक कोई कदम नहीं उठाया है।

ऐसे में एक ओर जहाँ किसान अतिवृष्टि या सूखे से परेशान है, तो वहीं आएदिन की जिंदगी में सरकारी नीतियाँ भी उसे कोई उम्मीद नहीं बँधाती हैं। प्रकृति पर तो व्यक्ति का नियंत्रण नहीं है और संबंधित योजनाएँ दूरगामी हैं, परंतु सरकार के स्तर पर किसान के हित में युद्धस्तर पर कार्रवाई होनी चाहिए और उसकी बदहाली का यह सिलसिला हर हाल में रुकना चाहिए। हमें कृषि के लिए दूरगामी एवं स्थायी योजना बनाकर इसका क्रियान्वयन करना चाहिए। ❑

महर्षि कणाद वेदों के प्रकांड विद्वान व परम तेजस्वी एवं निरासक्त ऋषि थे। एक बार राजा उदावर्त उनसे ब्रह्मविद्या का ज्ञान लेने पहुँचे और उनके समक्ष सहस्त्रों स्वर्णमुद्राएँ रखकर उनसे ज्ञान देने का आग्रह करने लगे। महर्षि बोले—''राजन्! इन मुद्राओं का मूल्य मेरी निगाह में कूड़े के समान है। अध्यात्म का ज्ञान पाने के लिए धनबल की नहीं, तपबल की आवश्यकता होती है। आप संयम, शील व सदाचार के व्रत का पालन करें और उचित अवधि के बाद शिष्य के रूप में यहाँ लौटें तो ज्ञान के अधिकारी बनेंगे।''

यह सुनकर राजा को क्रोध आ गया व आक्रोश में वे कुछ बोलने ही वाले थे कि उनके मंत्री ने उन्हें समझाया—''ऋषि कणाद तपस्या, निरासक्ति व वैराग्य की साक्षात् प्रतिमा हैं। उनके प्रति दुर्भाव रखकर आप पाप के भागी बनेंगे।'' बात उदावर्त की समझ में आ गई। उन्होंने लंबे समय तक पंच महाव्रतों का पालन किया और फिर श्रद्धा-भाव से महर्षि कणाद के समक्ष प्रस्तुत हुए। तब जाकर राजा उदावर्त ब्रह्मविद्या के ज्ञान को पाने के लिए सुपात्र बन सके।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार– 161

थायरॉयड की समस्या का यौगिक निदान

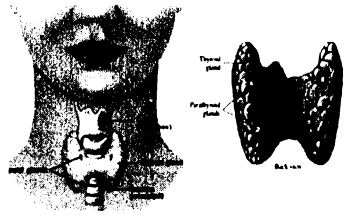

थायरॉयड बढ़ने की समस्या प्राय: महिलाओं में होने वाली एक गंभीर व्याधि है। हमारी श्वासनली के सामने गरदन वाले भाग में तितली के आकार की छोटी- सी ग्रंथि होती है, जिसे थायरॉयड कहते हैं। यह ग्रंथि टेट्रायोडोथायरोनिन (T3) एवं ट्रीओडोथायरोनिन (T4)—ये दो प्राथमिक हॉर्मोन बनाती है। ये हॉर्मोन ही हमारे शरीर की विभिन्न कोशिकाओं की ऊर्जा को नियंत्रित करने तथा चयापचय को संतुलित बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, लेकिन इस ग्रंथि से जब ये हॉर्मोन ज्यादा मात्रा में बनने लगते हैं तो उसे थायरॉयड बढ़ने की समस्या के रूप में देखा जाता है।

ऐसी समस्या को चिकित्सा विज्ञान की भाषा में 'हाइपरथायरायडिज्म' कहा जाता है। इसमें थायरॉयड ग्रंथि अधिक मात्रा में 'थायरोक्सिन हॉर्मोन' का उत्पादन करने लगती है, जिसके फलस्वरूप चयापचय का असंतुलन, धड़कनों का तेज होना, वजन कम या ज्यादा होना, पसीना आना, चिड़चिड़ापन, घबराहट, कमजोरी, अनिद्रा, बालों की कमजोरी, बेचैनी, मन की अस्थिरता जैसी अनेकों परेशानियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

थायरॉयड की उक्त समस्या के उत्पन्न होने का कारण आनुवांशिक अथवा जीवनशैली से संबंधित अन्य स्थितियाँ भी हो सकती हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसका परीक्षण टीएसएच, टी-4, टी-3 जैसे हॉर्मोन के मूल्यांकन के आधार पर किया जाता है। समस्या का निदान होने पर चिकित्सक उपचार हेतु एंटीथायरॉयड दवाइयाँ अथवा सर्जरी आदि का रोगानुसार परामर्श देते हैं। रोगी को इसकी दवाइयाँ लंबे समय तक अथवा हमेशा लेते रहना होता है।

इसके अतिरिक्त आज थायरॉयड की समस्या के समुचित उपचार अथवा प्रबंधन की कोई प्रक्रिया रोगी को उपलब्ध नहीं होती है, जिसे अपनाकर वह एलोपैथी पर निर्भरता को कम या समाप्त कर सके और पूर्णत: स्वास्थ्य प्राप्त कर सके, परंतु यहाँ उल्लेखनीय है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योग एवं स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत थायरॉयड बढ़ने की समस्या के समुचित प्रबंधन एवं समाधान की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है।

यह शोध अध्ययन सन् 2016 में शोधार्थी उज्ज्वल अरुण मस्के द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं प्रो0 सुरेशलाल वर्णवाल के निर्देशन व डॉ0 शैलेश पिटाले के सह-निर्देशन में पूरा किया गया है। प्रयोगात्मक विधि पर आधृत इस शोध अध्ययन का विषय है—**'अ स्टडी ऑफ दि इफेक्ट ऑफ यौगिक प्रैक्टिसेस ऑन हाइपरथायरॉयडिज्म।'**

अपने इस अध्ययन के प्रयोग हेतु शोधार्थी द्वारा महाराष्ट्र के नागपुर में पिटाले क्लीनिक से जहाँ, इन्डोक्राइन टेस्ट की सुविधा उपलब्ध थी, हाइपरथायरॉयडिज्म के कुल 80 रोगियों का चयन किया गया, जिनकी उम्र 20 से 50 वर्ष के मध्य थी। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व क्लीनिक की प्रयोगशाला से रक्त का नमूना लेकर बायोकेमेस्ट्री टेस्ट के अंतर्गत थायरॉयड ग्रंथि की (T3, T4 एवं TSH) जाँच की गई।

चिकित्सकीय परीक्षण के उपरांत सभी चयनित रोगियों को नियंत्रित समूह एवं प्रयोगात्मक समूह में वर्गीकृत कर केवल प्रयोगात्मक समूह को प्रतिदिन आधा घंटे तक तीन माह की अवधि तक योगाभ्यास कराया गया। शोधार्थी द्वारा योगाभ्यास के लिए जिन विशिष्ट यौगिक विधियों का प्रयोग किया गया, वे हैं (1) आसन—योगमुद्रासन, सुप्त-पवन मुक्तासन, कंधरासन, सर्वांगासन, कुल अवधि 8 मिनट, (2) प्राणायाम—नाड़ीशोधन, उज्जायी, शीतली और भ्रामरी, कुल अवधि 16 मिनट, (3) मुद्रा—विपरीतकरणी मुद्रा, कुल अवधि 3 मिनट (4) बंध—जालंधर बंध, कुल अवधि 3 मिनट।

प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की भाँति पुन: सभी चयनित रोगियों का चिकित्सकीय परीक्षण किया गया। दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर परिणामत: यह पाया गया कि शोध में प्रयुक्त

योगाभ्यास तकनीकों का हाइपरथायरॉयडिज्म की समस्या पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शोधार्थी द्वारा तथ्यात्मक रूप में यह परिणाम देखा गया कि प्रयोगात्मक समूह के रोगियों में थायरॉयड हॉर्मोन T3, T4,व TST की बढ़ी हुई मात्रा में कमी आई और उनका स्तर सामान्य हो गया है।

अत: परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हाइपरथायरॉयडिज्म की समस्या से ग्रस्त लोगों के लिए इस घातक बीमारी के समुचित प्रबंधन एवं समग्र उपचार में योगाभ्यास के रूप में योग चिकित्सा एक कारगर और सार्थक उपाय है। रोगी को एलोपैथी की भाँति इससे कोई दुष्प्रभाव भी नहीं हो सकते, अपितु रोगोपचार के साथ-साथ उसके संपूर्ण स्वास्थ्य और व्यक्तित्व पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इस शोध अध्ययन में जो सार्थक और सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं, इनका मुख्य कारण योगाभ्यास की तकनीकें हैं। वैज्ञानिक तथ्यों में स्पष्ट है कि शरीर की स्थिरता, संतुलन और स्वस्थता में थायरॉयड हॉर्मोन मुख्य भूमिका निभाते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में हमारी चयापचय प्रक्रिया का मूल आधार इन्हीं हॉर्मोन्स को कहा जा सकता है। योग में चयापचय की दर को संतुलित बनाए रखने की क्षमता होती है। नियमित अभ्यास से अंत:स्रावी ग्रंथि सहित शरीर के अन्य सभी ग्रंथि संस्थान सक्रिय एवं संतुलित कार्य करने लगते हैं। इस अध्ययन में भी इसी तथ्य एवं महत्त्व को ध्यान में रखते हुए योग चिकित्सा को थायरॉयड संबंधी समस्याओं के समुचित निदान के रूप में सामने लाने का प्रयास किया गया है।

इस अध्ययन में प्रयुक्त योगाभ्यास की प्रत्येक तकनीक विशिष्ट और लाभकारी है। जैसे—सर्वांगासन के अभ्यास का सीधा प्रभाव थायरॉयड ग्रंथि पर पड़ता है और उससे संबंधित सभी अंगों पर भी, जिससे हॉर्मोन्स का स्राव नियमित बना रहता है। योगमुद्रासन का अभ्यास पाचन तंत्र के माध्यम से संपूर्ण शरीर की क्रियाविधि पर सकारात्मक असर डालता है। सुप्त-पवनमुक्तासन कमर के निचले भाग एवं रीढ़ की हड्डियों को स्वस्थ बनाए रखने में अत्यंत प्रभावशील माना गया है। कंधरासन रीढ़ की हड्डी, कंधे, कमर के भाग को स्वस्थ बनाए रखने के साथ ही थायरॉयड व गले संबंधी विकारों के प्रबंधन में अत्यंत लाभकारी होता है।

प्राणायाम का अभ्यास हमारी श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाए रखने तथा प्राण-ऊर्जा में उत्पन्न बाधाओं, नकारात्मक प्रभावों को दूर करने का कारगर उपाय है। नाड़ीशोधन प्राणायाम से नाड़ियों की स्वच्छता प्राप्त होती है, जिससे आक्सीजन व प्राणवायु का प्रवाह सतत और संतुलित बना रहता है। यह मानसिक एकाग्रता, ध्यान, शांति, स्थिरता की दृष्टि से भी लाभकारी है।

उज्जायी प्राणायाम का अभ्यास विशेष रूप से तंत्रिका तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव डालता है और मन की स्थिरता, दृढ़ता एवं शांति की प्राप्ति में सहायक होता है। शारीरिक रूप से भी यह रक्त परिसंचरण तंत्र को संतुलित बनाए रखने में प्रभावी होता है। शीतली प्राणायाम का अभ्यास शरीर और मन को शीतलता और शांति प्रदान करता है।

शारीरिक तापमान को नियंत्रित बनाए रखने के साथ ही यह मानसिक और भावनात्मक आवेगों की रोक-थाम में भी अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है। भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास शारीरिक कोशिकाओं को मजबूती प्रदान कर रक्तचाप को नियंत्रित बनाए रखने में सहायक होता है। कंठ संबंधी रोगों व तनाव, चिंता, अवसाद आदि में भी इसका अभ्यास अत्यंत प्रभावकारी देखा गया है।

आसन, प्राणायाम की भाँति ही मुद्रा भी एक प्रभावकारी योगाभ्यास है। मुद्राओं में शरीर, मन एवं भावनात्मक स्तर पर संतुलन, सामंजस्य और विकसित बनाने का विज्ञान समाहित है। योग चिकित्सा में भी मुद्राओं का अभ्यास अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है। जैसे इस अध्ययन के योगाभ्यास में सम्मिलित विपरीतकरणी मुद्रा का अभ्यास मस्तिष्क तंत्र की क्षमता बढ़ाने तथा सेरेब्रल कार्टेक्स, पिट्यूटरी व पीनियल ग्रंथियों पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

इसके साथ ही इसका अभ्यास मानसिक सजगता और भावनात्मक स्थिरता की प्राप्ति में भी सहायक होता है। मुद्रा की तरह बंध भी एक विशेष योग तकनीक है, जिसमें स्थान विशेष पर प्राण-प्रवाह को नियत समय के लिए रोककर आंतरिक ग्रंथि व ऊर्जा संस्थानों पर प्रभाव डाला जाता है। इस शोध में सम्मिलित जालंधर बंध का अभ्यास हमारे श्वसन तंत्र को सुचारु बनाए रखने तथा थायरॉयड को नियंत्रित कर चयापचय-प्रक्रिया को स्वस्थ बनाए रखने में अत्यंत प्रभावकारी पाया गया है।

इस शोध अध्ययन की सम्मिलित योगाभ्यास की तकनीकों को हाइपरथायरॉयडिज्म के रोगियों हेतु ही नहीं, अपितु अन्य बीमारियों के प्रबंधन एवं उपचार में भी प्रयुक्त किया जा सकता है; क्योंकि इन योग-प्रक्रियाओं का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से हमारे संपूर्ण स्वास्थ्य पर पड़ता है। रोगोपचार के साथ-साथ शरीर, मन एवं भावनात्मक स्तर पर भी अनेकों लाभ प्राप्त होते हैं। इस अध्ययन के परिणाम एवं निष्कर्ष के आधार पर यह कहना उचित है कि थायरॉयड जैसी बीमारियों से बचने व इनके प्रबंधन व उपचार में योग चिकित्सा एक समर्थ और प्रभावकारी विकल्प है। यह चिकित्सा-प्रणाली बिना किसी दुष्प्रभाव के रोगी को दीर्घकालीन स्वास्थ्य प्रदान करती है व समूचे व्यक्तित्व एवं जीवन पर व्यापक रूप से सकारात्मक प्रभाव डालती है। ❑

प्रसिद्ध लोकसेवी ईश्वरचंद्र विद्यासागर गरमी की छुट्टियों में अपने गाँव गए। रेल के तीसरे दरजे से स्टेशन पर उतरे तो उनके पीछे कॉलेज का एक छात्र भी उतरा। वह छात्र अपना सामान जमीन पर रखकर कुली को आवाजें लगाने लगा। कोई कुली वहाँ नहीं पहुँचा तो वह छात्र व्यथित होने लगा। उसी समय ईश्वरचंद्र विद्यासागर उसके पास पहुँचे और शांत भाव से उसका सामान उठाकर रेलवे स्टेशन के बाहर पहुँचा दिया। उस युवक ने उन्हें पैसे देने का प्रयास किया तो विद्यासागर ने विनम्रता से वह पैसे लेने से इनकार कर दिया।

शाम को गाँव में उनके सम्मान में एक विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया। हजारों लोग ईश्वरचंद्र विद्यासागर को सुनने पहुँचे, उनमें से एक वह नवयुवक भी था। उसने जब ईश्वरचंद्र विद्यासागर को व्याख्यान देते हुए सुना तो वह ग्लानि से भर उठा कि उसने इतने बड़े महापुरुष से अपना सामान उठवाया। मन में क्षोभ लिए वह विद्यासागर जी के पास पहुँचा और उनके चरणों में अपना सिर रख दिया।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने उसे ऊपर उठाते हुए कहा—"बेटा! क्षमा मुझसे माँगने की आवश्यकता नहीं, वो तो तुम परमात्मा से माँगो, जिसने तुम्हें मनुष्य शरीर दिया। यह शरीर श्रम करने के लिए मिला है और श्रम करने से कोई मनुष्य छोटा नहीं हो जाता। जो अपना कार्य स्वयं करता है, स्वावलंबी बनता है; संसार-समर में वही विजयी होता है।" युवक की समझ में श्रम का मूल्य आ गया था और उसने वह शिक्षा जीवन भर अपनाई।

वृक्षारोपण एवं वनों का संरक्षण-संवर्द्धन

वृक्ष इस धरती की शान हैं, पृथ्वी पर जीवन एवं खुशहाली का आधार हैं। जहाँ भी हरे-भरे वृक्ष लगे होते हैं, वहीं प्रकृति अपने बहुमुखी रंगों में जीवंत होती है। फिर इसमें छोटे-बड़े जीव-जंतु से लेकर पशु-पक्षी एवं मानव तक संरक्षण पाते हैं और जीवन हर स्तर पर फलता-फूलता है। जहाँ भी सघन वन पाए जाते हैं, वहाँ जैव विविधता अपनी पूर्ण समृद्धि में होती है, पारिस्थितिकी संतुलन सुनिश्चित होता है, जिसमें स्वच्छ हवा से लेकर निर्मल जल, उर्वर भूमि एवं शांतिपूर्ण परिवेश सहज रूप से उपलब्ध हो जाते हैं एवं वहाँ हर कोई रहना पसंद करता है।

इसलिए शास्त्रों में हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने वृक्षारोपण के लिए बहुत प्रोत्साहित किया है। कहा गया है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है। इस तरह वृक्षारोपण को एक बहुत पावन कार्य माना गया है। भविष्य पुराण में वर्णन आता है कि जो व्यक्ति छाया, फूल और फल देने वाले वृक्षों का रोपण करता है या मार्ग में तथा देवालयों में वृक्षों को लगाता है, वह अपने पितरों को बड़े-बड़े पापों से तारता है और रोपणकर्त्ता इस मनुष्यलोक में महती कीर्ति तथा शुभ परिणाम प्राप्त करता है।

वृक्ष लगाना अत्यंत शुभदायक है। जिसके पुत्र नहीं हैं, उसके लिए वृक्ष ही पुत्र हैं। शास्त्रों में कदम-कदम पर वृक्षों की महिमा का गान मिलता है व इनके रोपण के लिए प्रेरित किया गया है। तदनुरूप भारतभूमि में एक पावन पुनीत कार्य मानते हुए बढ़-चढ़कर वृक्षारोपण होता रहा है और आज भी इसी आधार पर देश के विभिन्न क्षेत्रों में कई वनों को फलते-फूलते देखा जा सकता है। दुर्भाग्यवश व्यापक स्तर पर वृक्षारोपण एवं हरीतिमा संवर्द्धन को लेकर आज समझदारी का अभाव भी दिखता है, विशेषकर गाँवों से तबदील हो रहे नए कस्बों व शहरों में कंकरीट के जंगल खड़े हो रहे हैं, जिसमें हरियाली के दर्शन न के बराबर हो पाते हैं।

साथ ही विकास के नाम पर जंगलों का अंधाधुंध कटाव हो रहा है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का क्रम सुनियोजित ढंग से जारी है, प्रकृति के प्रति इनसान का रवैया इतना संवेदनहीन हो गया है कि अपने क्षुद्र लोभ के चलते इसके शोषण से उसे कोई गुरेज नहीं। भारत एवं विश्व भर में वनाच्छादित भूमि के आँकड़े इसकी गवाही देते हैं, जिनकी चिंताजनक स्थिति विचार के लिए बाध्य करती है।

भारतीय वन सर्वेक्षण की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार, देश के हिमालयन राज्यों के वनाच्छादन में कमी आई है। वर्ष 2019 में जम्मू-कश्मीर आदि राज्यों में घने वनों का घनत्व 4270 वर्गकिमी0 था, जो वर्ष 2021 तक 4155 वर्गकिमी0 तक कम हुआ। हालाँकि हिमाचल प्रदेश में वन-क्षेत्र में नौ वर्गकिमी0 की वृद्धि दर्ज की गई, लेकिन छितरे एवं मध्यम घनत्व श्रेणी के वनों में कमी पाई गई। रिपोर्ट के अनुसार, हिमालयी क्षेत्र में वनाच्छादित क्षेत्र की कमी के मुख्य कारण विकास गतिविधियाँ एवं कृषि-क्षेत्र में वृद्धि को पाया गया है।

हिमालयी क्षेत्रों में पर्यटन का चलन बड़ी तेजी से बढ़ा है। गरमियों में मैदानों में आसमान छूता पारा और इससे राहत पाने के लिए पहाड़ों की ओर बड़ी आबादी व सैलानियों का पलायन स्वाभाविक है, लेकिन प्राकृतिक संतुलन एवं जैव विविधता को ध्यान में रखते हुए इन पर्यटनस्थलों के रख-रखाव एवं विकास के सुरक्षित मानकों के अनुरूप कार्य नहीं हो पाया है। बढ़ती भीड़ को समेटने के लोभ में पहाड़ों की ढलान पर बिना किसी तय मानकों व सुरक्षित सीमा के कंकरीट के जंगल खड़े हो रहे हैं, जो गंभीर चिंता का विषय है।

यह सब तब और भी खतरनाक हो जाता है, जब ये क्षेत्र भूकंप की तीव्रता के जोन से होकर गुजरते हों। हिमालयी क्षेत्रों में इस तरह के अनियोजित विकास कार्य धड़ल्ले से चल रहे हैं, जो एक बड़ी जनसंख्या को एक गंभीर त्रासदी की ओर ले जा रहा है। इस पर तत्काल रोक व नियंत्रण की आवश्यकता है। भूमि पर हरियाली के संरक्षण-संवर्द्धन के

साथ खाली भूमि पर वृक्षारोपण को गति देने की आवश्यकता है।

हालाँकि एक सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में कुल वन-क्षेत्र में 1540 वर्गकिमी0 तक वृद्धि हुई है और वृक्षों का आवरण 721 वर्गकिमी0 तक बढ़ा है। सन् 2019 में वृक्षों का आवरण 7,12,249 वर्गकिमी0 था, वह सन् 2021 तक 7,13,789 वर्गकिमी0 तक बढ़ा है। इस समय देश का 21.27 प्रतिशत भू-क्षेत्र वृक्षों से ढका हुआ है।

दक्षिण भारत के तीन राज्यों—आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और कर्नाटक तथा उड़ीसा और झारखंड के दो पूर्वी राज्यों में वन-क्षेत्र में सर्वाधिक वृद्धि हुई है। इसके विपरीत उत्तर-पूर्व के राज्यों में वन-क्षेत्र में सबसे अधिक ह्रास हुआ है। इसके साथ वैश्विक स्तर पर इस संदर्भ में विचार अपेक्षित हो जाता है।

मालूम हो कि वैश्विक स्तर पर वृक्षों की अंधाधुंध कटाई समय की सबसे बड़ी त्रासदियों में एक है। सन् 1990 के बाद से हमने 13 लाख वर्गकिमी0 अर्थात दक्षिण अफ्रीका से भी अधिक भू-भाग के बराबर वन-क्षेत्र को उजाड़ दिया है। हालाँकि विश्व के कुछ हिस्सों में वृक्षारोपण को लेकर प्रयास चल भी रहे हैं व जिनके परिणाम उत्साहवर्द्धक व सबके लिए अनुकरणीय हैं। दक्षिण अमेरिका का सूरीनाम विश्व का एक ऐसा ही देश है, जहाँ 94 प्रतिशत क्षेत्र वनों से आच्छादित है। इसके बाद माइक्रोनेशिया के संघीय राज्य, गाबोन, सेशल्स और पलाउ का क्रम आता है।

इसके विपरीत कई देश ऐसे हैं, जो इस संदर्भ में उदासीनता लिए हुए हैं, बल्कि इस संदर्भ में बहुत भयावह तस्वीर पेश करते हैं। ब्राजील में अमेजन के जंगलों के साथ कुछ ऐसा ही हो रहा है। ज्ञात हो कि अमेजन के जंगलों को पृथ्वी के फेफड़ों की संज्ञा दी जाती है। इस धरती पर हर पाँच में से एक इनसान की साँस अमेजन के जंगल से निस्सृत ऑक्सीजन पर टिकी हुई है, लेकिन इन जंगलों की अंधाधुंध कटाई के साथ लोगों की साँसें छिनती जा रही हैं।

ज्ञातव्य है कि इन जंगलों में रहने वाले मूल निवासी वर्षा वनों पर आजीविका के लिए निर्भर रहते हैं, जंगलों के विनाश के साथ इनके अस्तित्व पर भी खतरा पैदा हो गया है। पिछले वर्ष ग्लासगो में हुए जलवायु-परिवर्तन शिखर सम्मेलन, कोप 26 में सौ से अधिक देशों ने सन् 2030 तक वनों की कटाई को रोकने का आश्वासन दिया था, लेकिन धरातल पर इस संदर्भ में कितना कार्य हो रहा है, यह विचारणीय है।

धरती के पारिस्थितिकी संतुलन के लिए, मनुष्य के अस्तित्व के लिए वनों का संरक्षण एवं वृक्षारोपण, समय की माँग है, युग धर्म है। इस संदर्भ में ठोस कदम उठाए जाने की आवश्यकता है, साथ ही अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए प्रकृति-पर्यावरण से खिलवाड़ कर रहे नापाक गठजोड़ों को हर स्तर पर ध्वस्त करने तथा एकतरफा विकास कार्यों पर अंकुश लगाने की भी आवश्यकता है; क्योंकि प्रश्न इस धरती के भविष्य का है, प्राणियों सहित मानवमात्र के अस्तित्व का है। ❑

आज के समय की आवश्यकता है कि सज्जन एवं सत्पुरुष आगे आएँ, मैदान में उतरें और पतनोन्मुख मनुष्यता की रक्षा विकृतियों, दुष्प्रवृत्तियों एवं दुष्टताओं से करें। आज अच्छाई-बुराई का देवासुर संग्राम छिड़ ही जाना चाहिए। देवपुरुष सज्जनों को अपने-अपने क्षेत्रों में अपने योग्य मोर्चा सँभाल लेना चाहिए। अपने सत्कार्यों, सदाचरण एवं सद्वृत्तियों की मशालें लेकर निकलें और जहाँ-जहाँ अंधकार देखें, उसे दूर करें। समाज की विकृतियाँ अब उस सीमा पर पहुँच चुकी हैं, जहाँ यदि उन्हें आगे बढ़ने से न रोका गया तो जीवन शेष न रह जाएगा।

—परमपूज्य गुरुदेव

शास्त्रीय संगीत का स्वास्थ्य पर प्रभाव

भारतीय संस्कृति को अपनी सृजनशीलता एवं कलात्मकता एवं जीवंतता के कारण सर्वत्र सराहा गया है। इसे विश्व भर में विद्यमान संस्कृतियों में श्रेष्ठतम माना गया है।

भारतीय संस्कृति ने प्राचीनकाल से ही विदेशियों को प्रभावित किया है। भारतीय चिंतन के अनुसार भारतीय सभ्यता व संस्कृति की संवाहक हैं—कलाएँ। जीवन में सकारात्मक प्रवृत्ति, उल्लास व उत्साह भरने के लिए कलाएँ मनुष्य को सदैव प्रेरित करती आई हैं। जिनमें से सबसे उत्कृष्ट ललित कलाओं को माना गया है।

इन ललित कलाओं में संगीत का स्थान सर्वोपरि है। संगीत एक ऐसी विधा है, जो मानव चित्त पर विशेष व अमिट छाप छोड़ती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत को विश्व के अन्य देशों के संगीतों से श्रेष्ठ माना गया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत का जन्म वैदिक युग में हुआ। उस समय संगीत ईश्वरप्राप्ति का सोपान था। देश के प्रमुख ग्रंथ गीता को श्रीकृष्ण ने बोलकर नहीं, गाकर सुनाया, इसीलिए उसका नाम गीता पड़ा।

ऋग्वेद में भी कहा गया है कि तुम यदि संगीत के साथ ईश्वर को पुकारोगे तो वह तुम्हारे हृदय गुहा में प्रकट होकर अपना प्यार प्रदान करेगा। संगीत में ईश्वर बसा हुआ है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत केवल जनमनोरंजन का ही साधन नहीं है। इसका संबंध प्रकृति व मानव शरीर से भी रहा है। भारत के प्राचीन वेदों में भारतीय संस्कृति व जीवन के तौर-तरीकों का वर्णन किया गया है। उसमें संगीत को सबसे श्रेष्ठ माना गया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत का मानव स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। संगीत के सात सुर 'सा, रे, गा, मा, पा, धा, नि' का शरीर पर विशेष प्रभाव पड़ता है। वेदों में शरीर के सात चक्रों का वर्णन किया है, जो मानव शरीर के विभिन्न भागों का संचालन करते हैं। संगीत के सात सुरों का इन सात चक्रों पर विभिन्न प्रभाव पड़ता है।

'सा-मूलाधार', 'रे-स्वाधिष्ठान', 'गा-मणिपुर', 'मा-अनाहत', 'पा-विशुद्ध', 'धा-आज्ञा' और 'नि-सहस्त्र' चक्र को क्रियाशील रखने में सहायता करते हैं। वेदों में संगीत को योग माना गया है, जिससे मानव शरीर स्वस्थ रहता है।

आयुर्वेद में शरीर रचना विज्ञान के अनुसार सभी बीमारियाँ वात, पित्त व कफ दोषों के कारण होती हैं। इन दोषों के निवारण में राग विशेष भूमिका निभाते हैं। रागों से आत्मिक सुख की अनुभूति होती है, जिसके कारण इन्हें रोगनिवारण में उपयुक्त माना गया है।

रागों से चिकित्सा को लेकर कुछ प्रयोग भी हुए हैं। 20वीं सदी में पं० ओंकारनाथ ठाकुर ने राग 'पूरिया' के चमत्कारिक गायन से इटली के शासक मुसोलिनी को अनिद्रा रोग से मुक्ति दिलाई थी। राग को अल्जाइमर के इलाज में भी लाभकारी माना गया है। अल्जाइमर रोग भूलने की बीमारी से संबंधित है, जो गंभीर अवस्था में रोगी के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

प्रसिद्ध न्यूरोलॉजिस्ट डॉ0 आलिवर स्मिथ के अनुसार 'राग शिवरंजनी' सुनने से स्मरणशक्ति बढ़ाई जा सकती है। वर्तमान में वैज्ञानिकों और चिकित्सकों ने प्रमाणित किया है कि 80 फीसदी बीमारियाँ मानसिक कारणों जैसे तनाव, चिंता, अवसाद आदि से होती हैं और संगीत एक ऐसी विद्या है, जिससे मानसिक संतुलन बना रहता है।

रागों द्वारा चिकित्सा 'संगीत चिकित्सा' कहलाती है। आज संगीत चिकित्सा पर शोध हो रहे हैं और इसके सकारात्मक परिणाम निकलकर सामने आए हैं। रागों को सुनने के लिए विशेष समय निर्धारित किए गए हैं। यों तो संगीत किसी भी समय सुना जा सकता है, लेकिन स्वस्थ रहने के लिए इसको समयानुसार सुनना चाहिए।

आयुर्वेद के अनुसार वात, पित्त और कफ दोष दिन के 24 घंटों के दौरान चक्रीय क्रम में कार्य करते हैं। सभी राग अलग-अलग मनोवृत्ति से जुड़े हुए हैं, जिसके कारण रागों का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है।

समयानुसार रागों को सुनकर रोगों पर नियंत्रण करके विशेष लाभ उठाया जा सकता है। इसके अलावा राग 'मारवा' और 'भोपाली' सुनने से आँतें मजबूत होती हैं।

मोबाइल, चलचित्र व खान-पान प्रभावित होने के कारण विश्व में नपुंसकता के रोग बढ़ गए हैं। राग 'वसंत' और राग 'सुरख' नपुंसकता को दूर भगाते हैं। 'आसावारी', 'भैरवी' व 'सुहानी' राग सुनने से मस्तिष्क संबंधी रोगों व सिरदरद से छुटकारा पाया जा सकता है। इन रागों को सुनकर रोगों का उपचार किया जा सकता है।

रागों को यदि ईश्वर की स्तुति में मिला दिया जाए तो इसका विशेष लाभ होता है। इससे आत्मिक शांति तो मिलती ही है साथ ही ईश्वर को भी प्राप्त किया जा सकता है।

संगीत के सात स्वरों द्वारा ईश्वर की आराधना होती है। 'सा' द्वारा ब्रह्मा, 'रे' द्वारा 'अग्नि', 'गा' द्वारा रुद्र, 'मा' द्वारा विष्णु, 'पा' द्वारा नारद, 'धा' द्वारा गणेश और 'नि' द्वारा सूर्य की उपासना की जाती है।

भगवान श्रीकृष्ण जब बाँसुरी बजाते थे तो गाय ज्यादा दूध देती थी। संगीत का प्रकृति के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है। संगीत के सात स्वरों की उत्पत्ति भी प्रकृति से हुई है।

'सा' की उत्पत्ति 'मोर' के स्वर से, 'रे' की उत्पत्ति 'ऋषभ' जैसे बैल, गाय आदि। 'ग' की उत्पत्ति 'अज' यानी भेड़, बकरी, 'म' क्रौंच पक्षी का स्वर है। 'प' की उत्पत्ति 'कोयल' से हुई है।

कहा भी जाता है कि पंचम स्वर में कोयल बोले। 'ध' धैवत है यानी घोड़ा और 'नि' की उत्पत्ति हाथी के स्वर से हुई है। उल्लेखनीय है कि पक्षी, जीव-जंतु केवल एक ही स्वर में बोल सकते हैं; जबकि मनुष्य सारे स्वरों में गा सकता है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत के महत्त्व का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अकबर के दरबार में नवरत्नों में शामिल तानसेन राग 'मल्हार' गाकर वर्षा करा देते थे और राग 'दीपक' गाकर दीप जला देते थे। रागों के स्वर का प्रकृति पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

हाल ही में मध्य प्रदेश के वन विभाग में एक शोध हुआ, जिसमें वृक्ष प्रजातियों को मशहूर सितार वादक रविशंकर की राग 'भैरवी' में निबद्ध रचना सुनाई गई। राग से आँवला और सीताफल सरीखी फल प्रजातियों के बीजों में अंकुर फूटने की दर में 9 प्रतिशत का इजाफा हुआ।

रागों से पशुओं के कठोर एवं हिंसक व्यवहार पर भी नियंत्रण किया जा सकता है। आज की इस भाग-दौड़ एवं आपा-धापी में जीवन की शांति, संतुलन एवं समरसता खो गई है। इस कारण जीवन में मनोरोग पैदा होने लगे हैं। संगीत चिकित्सा इनका सर्वोत्तम समाधान हो सकता है। ❑

चंद्रदेव ने सूर्यदेव से पूछा—''सूर्यदेव! परमात्मा ने मनुष्य को सर्वगुणसंपन्न बनाया है। उसे अपनी अंतरात्मा का एक अंश भी माना है। बहुत से ऋषि-मुनि तो उसे परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ राजकुमार कहकर पुकारते हैं, फिर मनुष्य के इस मायाजाल में उलझने का क्या कारण है?''

सूर्यदेव ने उत्तर दिया—''चंद्रदेव! मनुष्य एक जन्म को ही संपूर्ण जीवन मान बैठता है और यथासंभव शौक-मौज करने को आतुर होता है और इसीलिए अपने जीवन को अंधकारमय बनाता है। यदि मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य 'खाओ-पियो और मौज करो' के अतिरिक्त कुछ और रखे और अपना उद्देश्य ईश्वर के सच्चे सहायक और सहयोगी बनने में और उसकी सृष्टि को सुंदर, समुन्नत बनाने में माने, तो कोई कारण नहीं कि वह इस मायाजाल से अपने को मुक्त न कर सके।'' चंद्रदेव की शंका का समाधान हो गया।

युगगीता —268

जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वैसा ही बनता है उसका व्यक्तित्व

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की तीसरी किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के द्वितीय श्लोक की व्याख्या इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन के द्वारा पहले श्लोक में पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मनुष्यों के स्वभाव से उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्त्विकी, राजसी एवं तामसी, इस तरह से तीन प्रकार की होती है। उनके विषय में अब तुम मुझसे सुनो। यहाँ पर बात ध्यान देने योग्य है कि प्रश्न अर्जुन ने निष्ठा के विषय में पूछा है, परंतु भगवान श्रीकृष्ण उसे उत्तर श्रद्धा के विषय में देते हैं; क्योंकि जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, उसकी निष्ठा भी तदनुरूप ही होती है। वे कहते हैं कि श्रद्धा तीन प्रकार की होती है और वो मनुष्यों के स्वभाव के अनुसार उत्पन्न होती है।

ऐसे प्रश्न का उत्तर श्रीभगवान ही दे सकते हैं; क्योंकि वे ही जीवों के सुहृदय हैं और प्राणिमात्र के कल्याण के लिए उनका अवतरण हुआ है। अर्जुन के माध्यम से वे अत्यंत गुह्य ज्ञान को जनसामान्य के कल्याण हेतु उपलब्ध करा रहे हैं। प्रकृति के गुणों के प्रवाह में आकर कुछ प्राणी आसुरी वृत्ति में आसक्त हो जाते हैं, परंतु वे भी भगवान के अनुग्रह के अधिकारी होते हैं। इसीलिए जब भगवान अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हैं तो एक तरह से वे समस्त मानवता की जिज्ञासाओं को ही शांत कर रहे होते हैं। विशेष रूप से श्रद्धा का मर्म इसलिए सभी के कल्याण का हेतु है; क्योंकि इसको जानकर ही अमृतत्व की प्राप्ति संभव है। यहाँ श्रीभगवान अर्जुन को उसी श्रद्धा के विषय में बताते हैं, इसीलिए इस अध्याय को 'श्रद्धात्रय विभाग कहकर के पुकारा गया है। ऐसी सभी आध्यात्मिक जिज्ञासाओं के उत्तर गीता में मिल ही जाते हैं। इसीलिए वेदव्यास ने गीता के लिए कहा है कि संपूर्ण उपनिषद् गायें हैं और अर्जुन उनका बछड़ा है। जैसे बछड़े को देखते ही गायें द्रवित हो उठती हैं और उनके स्तनों से दुग्ध प्रवाहित होने लगता है, वैसे ही अर्जुन की जिज्ञासा को देखकर उपनिषद्रूपी गायों का सार सर्वस्व दुग्ध रूप गीता के ज्ञान का प्रवाह स्वतः प्रवाहित होने लगा।]

भगवान श्रीकृष्ण आगे बोले—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥3॥

शब्दविग्रह—सत्त्वानुरूपा, सर्वस्य, श्रद्धा, भवति, भारत, श्रद्धामयः, अयम्, पुरुषः, यः, यच्छ्रद्धः, सः, एव, सः।

शब्दार्थ—हे भारत! (**भारत**), सभी मनुष्यों की (**सर्वस्य**), श्रद्धा (**श्रद्धा**), उनके अंतःकरण के अनुरूप (**सत्त्वानुरूपा**), होती है (**भवति**), यह (**अयम्**), पुरुष (**पुरुषः**), श्रद्धामय है, (**श्रद्धामयः**), इसलिए (**अतः**), जो पुरुष (**यः**), जैसी श्रद्धावाला है (**यच्छ्रद्धः**), वह स्वयं (**सः**), भी (**एव**), वही है (**सः**)।

अर्थात हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा अंतःकरण के अनुरूप होती है। यह मनुष्य श्रद्धामय है। इसलिए जो जैसी श्रद्धावाला है, वही उसका स्वरूप है अर्थात वही उसकी निष्ठा है। श्रीभगवान कहते हैं कि—'यो यच्छ्रद्धः' अर्थात जो मनुष्य जैसी श्रद्धावाला है, वैसी ही उसकी निष्ठा होती है। स्वरूप तो सभी प्राणियों का परमात्मा की अभिव्यक्ति है, पर संग के अनुसार, मानसिकता के अनुरूप व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्न-भिन्न तरह के गुणों की प्रधानता हो जाती है और फिर उसका

अंत:करण उसी के अनुरूप बन जाता है, जिसे भगवान सात्त्विकी, राजसी और तामसी कहकर के पुकारते हैं।

ध्यान से देखें तो अध्यात्म के क्षेत्र में जितनी भी शक्तियाँ हैं, ताकतें हैं, विभूतियाँ हैं—उन सबका आधार एक ही शक्ति है और उस शक्ति का नाम श्रद्धा है। लोग मंत्र एक जैसा ही जपते हैं, उनके साधना के तरीके भी एक ही जैसे होते हैं, गुरु भी उनके एक ही होते हैं, परंतु तब भी उनके प्रयासों में और प्रयासों के परिणामों में भिन्नता हो जाती है। यह अंतर श्रद्धा के आधार पर आता है।

अंतर इस आधार पर आता है कि व्यक्ति के अंत:करण में स्थापित निष्ठा कैसी है? इसीलिए बुद्ध के साथ जीवन गुजारने वाले आनंद को वो नहीं मिल पाता, जो उनके साथ एक क्षण गुजारने वाले मक्खलिगोशाल को मिल जाता है। कहा जाता है कि मक्खलिगोशाल को समाधि मात्र भगवान बुद्ध को एक क्षण के लिए निहारने पर ही लग गई थी। ऐसा जब घटा तो आनंद को बुरा लगा कि मैं तो निरंतर भगवान बुद्ध के साथ रहा हूँ, साथ ही चला हूँ, फिर जो इसे मिला, वो मुझे क्यों नहीं मिला तो उसने अपनी जिज्ञासा भगवान बुद्ध के सम्मुख रखी।

प्रत्युत्तर में भगवान बुद्ध बोले—"आनंद! स्मरण करो कि जब पहले दिन तुम मेरे पास आए थे तो तुमने क्या माँगा था? तुमने मुझसे तीन कामनाएँ पूरी करने को कहा था और वो मैंने हमेशा पूरी की हैं। भगवान बुद्ध ने आनंद को याद दिलाया कि आनंद ने उनसे पहली इच्छा यह व्यक्त की थी कि जिस कक्ष में भगवान सोएँगे, वहीं आनंद को सुलाएँगे।"

भगवान बुद्ध बोले—"और आनंद! तुम्हें मैंने हमेशा साथ ही सुलाया है। दूसरा, तुमने माँगा था कि जो प्रश्न तुम पूछोगे, उसका उत्तर मैं दूँगा। तो वो भी मैंने हमेशा दिया है। तीसरा, तुमने माँगा था कि जिसको भी तुम मुझसे मिलाना चाहोगे तो मैं उससे मिलूँगा तो वो भी मैं हमेशा मिला हूँ। भगवान बुद्ध ने आनंद से पूछा कि इन तीन कामनाओं में समाधि कहाँ थी? तुमने जो चाहा तुम्हें मिला, उसने जो चाहा, वो उसे मिला।"

भगवान बुद्ध आनंद से आगे बोले—"इस संसार में शिष्य चार तरह के घोड़ों की तरह से होते हैं। कुछ घोड़े ऐसे होते हैं, जिनके लिए इशारा काफी हो जाता है। चुटकी बजाते ही उठ खड़े होते हैं। कुछ को सहलाना पड़ता है। कुछ को हाँकना पड़ता है तो कुछ के लिए धमकाना, डंडे मारना भी नाकाफी रहता है।" भगवान बुद्ध बोले—"जिस घोड़े के लिए चुटकी बजाना पर्याप्त हो जाता है, वो ही जल्दी शिखर पर पहुँचता है। वैसे ही जिस साधक के लिए इशारा काफी होता है, वो ही श्रद्धावान होता है।" वैसे ही व्यक्तित्व के लिए श्रीभगवान कहते हैं कि **श्रद्धामयं य: पुरुष: यच्छ्रद्ध: स एव स:।**

यह स्पष्ट है कि मनुष्य श्रद्धाप्रधान है। जैसी जिसकी श्रद्धा होगी, वैसा ही उसका रूप होगा। उससे जो प्रवृत्ति होगी वह श्रद्धा को लेकर, श्रद्धा के अनुसार ही होगी। जो भी मनुष्य आत्मकल्याण के मार्ग का पथिक होता है, उसकी

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मधवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते॥

—सामवेद

अर्थात परमेश्वर कभी किसी के कर्म को निष्फल नहीं करता और न किसी निरपराध को दंड देता है। इस जन्म में और पूर्वजन्म में प्रत्येक मनुष्य के लिए कर्मफल की व्यवस्था कर ली गई है।

श्रद्धा सात्त्विक होती है। वही हमें परमात्मा की ओर लेकर के जाती है। जो हमें संसार में निरत करे वो तो राजसी व तामसी श्रद्धा हो जाती है। जिसका मन मात्र सुख, संपत्ति, संपदा व भोग में लगा हुआ है, उसकी श्रद्धा राजसी है और जो केवल पैशाचिक प्रवृत्तियों में पाशविक कामनाओं की पूर्ति में निमग्न है, उसकी श्रद्धा तामसी है।

सात्त्विक, राजसी व तामसी—ये तीनों गुण प्रकृति के हैं और सभी प्राणियों में व्याप्त हैं, पर श्रद्धा अंत:करण के अनुरूप ही होती है। इसलिए अंत:करण में सात्त्विक, राजसी या तामसी जिस गुण की प्रधानता रहती है, उसी गुण के अनुसार धारणा, मान्यता आदि बनती है और उसी के अनुसार श्रद्धा का निर्माण होता है। यही शाश्वत सत्य भगवान इस श्लोक में कहते हैं। (क्रमश:)

सद्गुणों का अभ्यास एवं चरित्र निर्माण

कहावत है कि यदि धन गया तो समझो कि कुछ नहीं गया। यदि स्वास्थ्य गया तो समझो कि कुछ गया और यदि चरित्र गया तो मानो सब कुछ गया; क्योंकि धन गया तो इसे फिर से अर्जित किया जा सकता है। स्वास्थ्य को अर्जित करना उतना सरल नहीं होता, अत: इसको धन से अधिक मूल्यवान माना गया है, लेकिन चरित्र को सबसे मूल्यवान माना गया है; क्योंकि जब एक बार किसी व्यक्ति का चरित्र कलंकित हो जाता है, तो उससे उबरना कठिन हो जाता है। व्यक्ति दूसरों की नजरों में ही नहीं, अपनी नजरों में भी गिर जाता है।

चरित्र का सीधा संबंध व्यक्ति की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता से है। यदि किसी भी स्तर पर व्यक्ति की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न लगता है, तो चारित्रिक रूप में कहीं दुर्बलता का आभास होता है। अत: चरित्र निर्माण को जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया कहें तो अतिशयोक्ति न होगी, लेकिन इस संदर्भ में अधिकांश लोग अधिक सजग-सचेष्ट नहीं पाए जाते। अत: इस सुरदुर्लभ जीवन का समुचित लाभ नहीं ले पाते तथा दूसरों पर सकारात्मक छाप नहीं छोड़ पाते और जीवन में असंतुष्टि एवं हताशा-निराशा के बीच एक गहरे मलाल भरे जीवन को जीते देखे जाते हैं।

पुरातन समय में नैतिकता के उच्चस्तरीय मानदंडों पर कसते हुए चरित्र निर्माण की प्रक्रिया संपन्न होती थी, लेकिन आज के दूषित वातावरण एवं कलिकाल के प्रभाव में वैसा कुछ कर पाना सबके लिए संभव नहीं। इसलिए परमपूज्य गुरुदेव ने अपने जीवन के अंतिम काल में सृजित क्रांतिधर्मी साहित्य की पुस्तक जीवन-साधना के स्वर्णिम सूत्र में ऐसे व्यावहारिक सूत्रों का वर्णन किया है, जिनका अभ्यास व्यक्ति को चरित्र निर्माण के पथ पर आरूढ़ कर देता है।

परिवार, समाज और संसार के बीच रहते हुए भी इनका अभ्यास किया जा सकता है। इनमें वर्णित सद्गुणों के अभ्यास के साथ चरित्र निर्माण की प्रक्रिया संपन्न होती है। जीवन-साधना के इन स्वर्णिम सूत्रों में, जीवन को बेशकीमती बनाने वाले चरित्र निर्माण के बीज छिपे पड़े हैं।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में, प्राचीनकाल में हर साधक को प्रारंभ में यम-नियम साधने पड़ते थे। उसके अंतर्गत सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि की साधना अनिवार्य थी। उस समय के सामाजिक वातावरण में वे सर्वसाधारण के लिए साध्य रहे होंगे, परंतु आज की स्थिति में वैसा संभव नहीं दीखता। अब तो व्यावहारिक पंचशीलों का परिपालन आदतों में सम्मिलित हो सके, तो भी काम चल जाएगा। श्रमशीलता, मितव्ययिता, शिष्टता, सुव्यवस्था और सहकारिता के पंचशील हमारे क्रियाकलाप में पूरी तरह घुल-मिल सकें, तो समझना चाहिए कि प्राचीनकाल की तप-साधना के समतुल्य साधनात्मक साहस बन पड़ा।

इन पंचशीलों के साथ परमपूज्य गुरुदेव उच्च मानसिकता के चार सूत्रों को भी जोड़ते हैं, जो हैं— ईमानदारी, जिम्मेदारी, समझदारी एवं बहादुरी तथा इनके अभ्यास पर बल देते हैं।

श्रमशीलता पहला सद्गुण है। श्रमशील जीवन चरित्रनिष्ठ व्यक्तित्व का पर्याय है। ऐसा व्यक्ति अपने श्रम की आजीविका से निर्वाह करता है, परिवार का भरण-पोषण करता है। इसका परिणाम होता है, संस्कारवान परिवार एवं सद्गृहस्थ जीवन। श्रम के अभाव में व्यक्ति कामचोर बन जाता है, जिसे परमपूज्य गुरुदेव एक गाली के रूप में मानते थे, जो किसी भी रूप में एक स्वाभिमानी व्यक्ति को स्वीकार नहीं हो सकती। अत: श्रम की गरिमा व श्रमशील जीवन की चरित्रनिर्माण का एक व्यावहारिक आधार मान सकते हैं, जिसका हर सज्जन व्यक्ति पालन करता है।

मितव्ययिता में व्यक्ति अपनी चादर के हिसाब से पैर पसारता है और अपनी आय के अनुकूल खरच की व्यवस्था करता है। इसे सादा जीवन उच्च विचार का अभ्यास भी कह सकते हैं। इसके अभाव में फजूलखरची एवं विलासिता जीवन का अंग बनती है। ऐसे में व्यक्ति अपनी सीमित आय

के साथ बढ़ी-चढ़ी माँगों को लेकर आर्थिक आधार पर भ्रष्टाचार के लिए बाध्य होता है।

इसे एक चारित्रिक दोष ही माना जाएगा, जो यदि नियंत्रित न किया गया, तो बड़े-बड़े घपले-घोटालों के रूप में प्रकट होता है, जैसा कि आएदिन समाचारपत्रों में सुर्खियाँ बनती रहती हैं। इसके साथ व्यक्ति आर्थिक रूप में अपना चारित्रिक आधार खो बैठता है और सामाजिक स्तर पर लांछन का पात्र बनता है और अंतरात्मा के कटघरे में भी अपराधी की भाँति अनुभव करता है।

सुव्यवस्था एक सुगढ़ एवं सफल जीवन का आधार रहता है, जो एक कार्यकुशल एवं जिम्मेदार व्यक्तित्व के रूप में व्यक्ति में सशक्त चरित्र का एक आयाम जोड़ती है। इसके अभाव में अस्त-व्यस्त जीवनचर्या के साथ मानसिक शक्तियों का ह्रास होता रहता है। व्यक्ति का किसी लक्ष्य पर केंद्रीकरण नहीं हो पाता। ऐसे में अपने आप में उलझे, एक असफल जीवन की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लग जाते हैं व व्यक्ति एक सार्थक-सफल जीवन की कसौटी पर खरा नहीं उतर पाता, जिसे अनुकरणीय माना जा सके।

शिष्टता व्यावहारिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण सद्गुण है। पूज्य गुरुदेव ने कहा है कि शालीनता बिना मोल मिलती है, लेकिन इससे सब कुछ खरीदा जा सकता है। शिष्ट, शालीन एवं विनम्र व्यक्ति सबका विश्वासपात्र एवं सम्मान का अधिकारी बनता है और किसी भी समूह में अपना विशेष स्थान बना लेता है। इसके अभाव में व्यक्ति पर अहंकारी, घमंडी, उजड्ड, उद्दंड आदि होने का ठप्पा लग जाता है, जिसे शायद ही कोई अपने समूह में शामिल करना चाहे। ऐसे में व्यावहारिक जीवन में एक सम्मानपूर्ण जीवन कठिन हो जाता है।

सहकारिता अगला गुण है, जिसके आधार पर परिवार, समाज एवं समूह में सामंजस्य बैठाकर, मिल-जुलकर कार्य संभव होता है। इसके अभाव में व्यक्ति इक्कड़ व स्वार्थी बनकर अपना राजमहल तो खड़ा कर सकता है, लेकिन आम जनता के बीच में व्यक्ति का चरित्र संदिग्ध ही रहता है। ऐसे व्यक्ति को एकाकी व उपेक्षित रहना पड़ता है और एक नीरस व निराश जीवन उसके पल्ले पड़ता है। ऐसे में दूसरों के उचित स्नेह, सहयोग व सम्मान के अभाव में व्यक्ति संकीर्ण स्वार्थपरता की कारा में ही घुटन भरा जीवन जीने के लिए अभिशप्त होता है।

ईमानदारी का अभाव बेईमानी के रूप में परिभाषित होता है। कोई भी व्यक्ति ऐसे व्यक्ति का साथ नहीं चाहता। एक चोर-डाकुओं का सरदार भी अपने समूह में ईमानदार व्यक्ति की भरती चाहता है, जो हासिल किए धन-वैभव का ईमानदारी से बँटवारा कर सके। **जिम्मेदारी** के अभाव में लापरवाही शेष बचती है, जिसके परिणाम व्यक्ति से लेकर सामाजिक जीवन में भयंकर रहते हैं। गैरजिम्मेदार व्यक्ति को कोई भी बड़ी जिम्मेदारी नहीं दी जा सकती। उसका चरित्र भी कर्मनिष्ठा के आधार पर संदिग्ध ही रहता है।

समझदारी के अभाव में नासमझी, अदूरदर्शिता, मूर्खता पनपती है, जिसके आधार पर किसी बड़े व सार्थक निर्णय की आशा नहीं की जा सकती। एक विवेकहीन व्यक्ति से चरित्रनिष्ठा की अपेक्षा नहीं की जा सकती। **बहादुरी** के अभाव में कायरता, भीरुता पनपती है। इसके रहते वैयक्तिक जीवन हो या सामूहिक, सत्य के पक्ष में साहसपूर्वक आग्रह व जुझारूपन की कल्पना नहीं की जा सकती। एक निर्भीक व्यक्ति ही चरित्रवान हो सकता है, जो सत्य का सामना करने व लिए गए निर्णय की कीमत चुकाने के लिए तत्पर हो।

आजीविका कमाना एक आवश्यक कार्य है। मनोरंजन एवं शरीर सुख का भी ध्यान रखा जाना चाहिए; पर इतने तक ही यदि सारी गतिविधियाँ सीमित हो जावें तो यही कहना पड़ेगा कि मनुष्य जीवन जैसे बहुमूल्य सौभाग्य को कौड़ी मोल बरबाद किया जा रहा है।

इस तरह उपरोक्त वर्णित सद्गुणों के अभ्यास के साथ चरित्र निखरता है, व्यक्तित्व मूल्यवान बनता है और जीवन सार्थक सफलता एवं स्थायी सुख-संतोष की ओर बढ़ता है। चरित्रनिष्ठा व्यक्ति के इस लोक को भी सँवारती है और परलोक को भी सुधारती है। मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठता से जुड़ी सभी फलश्रुतियाँ एवं संभावनाएँ इसके आधार पर संभव होती हैं। परमपूज्य गुरुदेव द्वारा अपने जीवन के निचोड़ के रूप में अंतिम दिनों में प्रतिपादित जीवन-साधना के ये स्वर्णिम सूत्र हर जीवनसाधक के लिए गुरुमंत्र की भाँति वरेण्य हैं। ❑

आस्था और विश्वास का संकट

धरती रक्तरंजित हो रही है। मनुष्य जाति पर अंधविश्वास का संकट है। विश्व के एक बड़े भाग में विकृत आस्था के फलस्वरूप रक्तपात हो रहा है। एक नए तरह का विश्वयुद्ध छिड़ गया है। यह अंधयुद्ध है। आस्था और विश्वास की अपनी मान्यताएँ हैं; अपने सत्य हैं। उन्हें दूसरों पर थोपने या मनवाने के लिए व्यापक नरसंहार हो रहे हैं। भारी बमबारी हो रही है। आकाश में धुआँ-ही-धुआँ है। अंधविश्वासी शक्तिशाली हैं। वे आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों से लैस हैं। मानवताप्रेमी असहाय हैं। आधुनिक वैज्ञानिक शोध ने विश्व के अनेक अंधविश्वासों को झुठलाया है।

सृष्टि संचालित करने वाली ईश्वर जैसी वैयक्तिक आस्था प्रत्यक्षसिद्ध नहीं है। बेशक उसके अस्तित्वहीन होने के भी वैज्ञानिक प्रयोग अभी तक नहीं हुए, लेकिन जगत् की गतिशीलता के तमाम नियम खोजे जा चुके हैं।

जीवन जगत् के तमाम रहस्य खुल गए हैं। अस्तित्व गति और ऊर्जा का महायोग है। विज्ञान गति और ऊर्जा का अध्ययन है। सूक्ष्मतम परमाणु की गति और ऊर्जा का ही विवेचन है। विज्ञान पंख फैलाकर उड़ा है, लेकिन हम अपने पंथिक विश्वासों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने, जाँचने के अभ्यस्त नहीं हैं। यह अत्यंत सुखद होता यदि हम सब अपनी आस्था को भी विज्ञान और दर्शन से जाँच सकते। तब दुनिया वास्तव में कितनी सुंदर प्रतीत होती।

निस्संदेह आस्था का सम्मान आवश्यक है, लेकिन आस्था से सतत संवाद भी जरूरी है। आस्था को अंधविश्वास बनते देर नहीं लगती, इसलिए आस्था के प्रति आस्था रखते हुए प्रश्न और प्रतिप्रश्न करते रहना ही विज्ञान है। प्रश्न-प्रतिप्रश्न और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अंधविश्वास टूटते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से जीवन जगत् को परखते रहने से वास्तविक सत्य सामने आते हैं। ऐसे दृष्टिकोण से संसार को अंधविश्वासी कलह से बचाया जा सकता है। ईश्वर अधिकांश विश्व की आस्था है। भारतीय परंपरा में ईश्वर को मानने नहीं, जानने पर जोर है। यहाँ अंधविश्वास नहीं ईश्वरदर्शन की महत्ता है, लेकिन इसी के साथ सांसारिक ज्ञान को भी बराबर का महत्त्व दिया गया है।

उपनिषद् दर्शन में ईशावास्योपनिषद् सबसे पुराना है। इस उपनिषद् में सांसारिक ऐश्वर्य व ज्ञान को अविद्या और ब्रह्मज्ञान को विद्या कहा गया है। इस उपनिषद् में एक सूत्र आता है कि

अंधं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः॥

अर्थात ऋषि का संदेश है कि संसार और आस्था विश्वास दोनों की सम्यक जानकारी जरूरी है। संसार के ज्ञान का उपकरण पदार्थ विज्ञान है और आस्था के बोध का उपकरण आत्मानुभूति है।

योगविज्ञानी पतंजलि ने स्मृति की सुंदर परिभाषा की है। योगसूत्र में वे कहते हैं कि

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।

अर्थात दूसरे से प्राप्त या चुराए गए ज्ञान से भिन्न स्वयं अनुभव किए गए विषय का बोध स्मृति है। यह बड़ा वैज्ञानिक सूत्र है। सुनी सुनाई, दूसरे की बताई जानकारी अर्थहीन है। पतंजलि ने ऐसी जानकारी के लिए बड़ा कठोर शब्द प्रयोग किया है—असम्प्रमोष। इसका सीधा अर्थ अस्तेय या चोरी है।

अंधविश्वासों में ऐसी ही मान्यताएँ हैं। आस्तिक दुनिया को ईश्वर की रचना मानते हैं। क्या ईश्वर अपनी ही रचना का संहार चाहेगा? सर्वशक्तिमान ईश्वर ऐसा काम मनुष्यों को क्यों सौंपेगा? परमपिता और दयालु ईश्वर रक्तपात का समर्थक कैसे होगा? सत्य जानने के लिए यहाँ ज्ञान-विज्ञान और दर्शन से प्राप्त तमाम जानकारियाँ हैं।

धर्म, पंथ, मत और विचार का उद्देश्य मनुष्य और समस्त प्राणिजगत् को सुखमय बनाना है। मनुष्य जाति को मारकर क्या मिलेगा? शव, चीत्कार, हाहाकार और शोक के अलावा क्या उपलब्धि होगी? विज्ञान और दर्शन से सीखने के अलावा और कोई मार्ग नहीं।

विज्ञान सत्य का झरोखा है। सत्य का साक्षात्कार बड़ा प्यारा शब्द है। साक्षात् का अर्थ है—अक्ष या आँख के सामने। अक्ष का अर्थ इंद्रियबोध भी है। आँख के सामने नहीं तो सुनने, सूँघने, स्वाद लेने या स्पर्श करने की गतिविधि भी पर्याप्त है। अनुमान से प्रत्यक्ष प्रमाण की ओर बढ़ना असंभव नहीं है।

ईशावास्योपनिषद् में ईश-सत्य व संसार-सत्य देखने की अभिलाषा है। पूषा वैदिककाल के प्रसिद्ध देव प्रतीक हैं। उनसे स्तुति है कि हिरण्यपात्र से ढके सत्य का अनावरण करो। हम सत्य दर्शन के अभिलाषी हैं। पात्र हटाओ और सत्य दिखाओ। सत्य पर अंधविश्वास का आवरण है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण जरूरी है। विज्ञान सत्यप्राप्ति का दिव्य उपकरण है।

इस स्तुति में पूषा की जगह विज्ञान रख दें तो प्रार्थना का रूप-स्वरूप आधुनिक हो सकता है। तब स्तुति होगी—तमाम तरंगों से आच्छादित प्रकृति के नियमों को हम जानना चाहते हैं। हे विज्ञान देवी! अस्पष्ट तरंगों का यह आच्छादन हटाओ और हमें जीवन जगत् के मूल रहस्यों को दिखाओ। हम सत्यनिष्ठ हैं, आवरण हटाओ—

अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।

विश्व परिवार के सामने अस्तित्व का संकट है। आस्था और विश्वास चरमराने लगा है। इस समस्या का समाधान करने में विलंब नहीं किया जाना चाहिए। आस्था और विश्वास हमारे जीवन का आधार है। भारतीय चिंतन दर्शन में प्रश्न और तर्क को ज्ञान का उपकरण माना गया है। यजुर्वेद में प्रश्नों को देवता बताया गया है। प्रश्न पूछे जाने चाहिए कि निर्दोषों के नरसंहार से ईश्वर का क्या संबंध है?

विश्वासी होना ठीक है, लेकिन इसके साथ खोजी होना आधुनिकता का ही गुण है। रक्तपात और हिंसा को ईश्वर के साथ जोड़ने वाले मानवताविरोधी हैं। इसे सभ्यताओं का संघर्ष भी नहीं कहा जा सकता। यह 'क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन' नहीं है। सभ्यता और बर्बरता का संघर्ष है। सभ्यता और संस्कृति मर रही है, लहूलुहान है। आवश्यकता है कि इस समाधान के लिए विश्व के सभी राष्ट्र आगे आएँ। विचारक व प्रतिभावान चिंतन करें। मनुष्यता के प्रति संवेदना एवं भावना को जगाने की जरूरत है। तभी आहत शोकग्रस्त मानवता की चीख-पुकार सुनी जा सकती है।

रक्तपात उचित नहीं। सत्य यह है कि सत्य एक है। विवेचक इसे अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

संपूर्ण जगत में एक ही चेतन का प्रवाह है, यह एक चेतन या ऊर्जा ही सभी रूपों और तरंगों में प्रकट होती है। इसे ईश्वर कहने में कोई कठिनाई नहीं है। कठिनाई तब है, जब हम विराट परम चेतन या परम ऊर्जा को वैयक्तिक इकाई के रूप में देखते हैं। तब सबके अपने ईश्वर हो जाते हैं। तमाम ईश्वरभक्त अपने-अपने ईश्वर के समर्थन में विभाजित हो जाते हैं और कट्टर होकर युद्धरत भी हो जाते हैं।

विज्ञान और भारतीय दर्शन इस विभाजन को एक बताते हैं। समूचा अस्तित्व एक है ही। विज्ञान से सत्य का उद्घाटन होता है, लेकिन विज्ञान की सीमा है। विज्ञान सत्य में शिव की स्थापना नहीं कर सकता। शिव और लोक-मंगल पर्यायवाची हैं। बम या परमाणु बम बनाने वाले वैज्ञानिक ऊर्जा का सत्य उद्घाटित करने में सफल हुए हैं, लेकिन उनके दुरुपयोग होने पर विज्ञान का कोई वश नहीं है। विज्ञान की शक्ति बड़ी है, वह दुर्गा है, लेकिन विज्ञान की यह देवी मातृरूपेण संस्थिता नहीं है। यह वात्सल्य, ममत्व से रीती है। अंधविश्वास के हाथ में आधुनिक संहारक शक्ति खतरनाक है। आस्था-विश्वास से तर्क और संवाद के द्वारा वश में करना ही चाहिए। ❑

स्वामी रामतीर्थ विदेश दौरे से लौटे तो लोगों ने उनसे पूछा कि अन्य देशों की भाँति भारतवर्ष का विकास क्यों नहीं हो सका? तो प्रत्युत्तर में स्वामी जी बोले—"भारतवर्ष की उन्नति इसलिए नहीं हो पाई, क्योंकि हमने परिश्रम करने का मूल्य खो दिया, जीवन में विकास संघर्ष व श्रम द्वारा हो पाता है, यदि हम हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाएँ, तो उससे कुछ भी हासिल नहीं हो सकता।"

देवत्व के जागरण का आधार यज्ञ

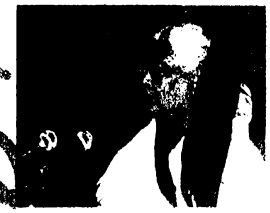

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी की यह विशिष्टता है कि उसमें ज्ञान के शिखर एवं संवेदना की गहराई को साथ-साथ अनुभव किया जा सकता है। अपने इस प्रस्तुत उद्‌बोधन में वंदनीया माताजी, यज्ञ की विशद विवेचना करते हुए कहती हैं कि यज्ञ का मूल आधार लोक-कल्याण है। संत कबीर का उदाहरण देते हुए वे कहती हैं कि जिस तरह संत कबीर ने थोड़ी-सी हींग से अनेकों को तृप्त कराया, उसी तरह यज्ञ की मूल भावना भी समष्टि की तृप्ति में सन्निहित है। इसके साथ ही वंदनीया माताजी यज्ञ को देवत्व के जागरण का मूल आधार घोषित करती हैं। वे कहती हैं कि यज्ञ वस्तुस्थिति में एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम में समाजतंत्र में एक समग्र एवं सम्यक परिवर्तन संभव है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को, जो नागपुर अश्वमेध यज्ञ में निस्सृत हुई।

क्या है यज्ञ ?

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

बेटियो! आत्मीय प्रज्ञा परिजनो!

यह नगरी संतों, सुधारकों की है। मैं उन्हें नमन करती हूँ। आप सभी भावनाशील हैं, जो अश्वमेध के लिए यहाँ आए हैं। स्त्रियों के लिए नहीं है गायत्री यज्ञ, यह भ्रांति गुरुजी ने मिटाई।

यज्ञ क्या है ? यह एक यथार्थ है, सिद्धांत है, जीवन है, चरित्र है, व्यवहार है। व्यक्ति का चिंतन, चरित्र और व्यवहार ठीक है, जहाँ व्यक्ति संगठित होकर रहते हैं—वहीं यज्ञ है।

अश्वमेध क्या है ? अश्व जैसी पाशविक प्रवृत्तियाँ—जो लगाम लगने पर भी नहीं रुकतीं, उन्हें यज्ञ कुंड में होम देना ही अश्वमेध यज्ञ है। व्यक्ति को जीवंत बनाने के लिए यज्ञों की परंपरा डाली गई।

कबीर को उनके गुरु ने एक चवन्नी भेजी और कहा इससे सभी को भोजन करा दो। कबीर ने उससे हींग खरीदी और खिचड़ी में डालकर सभी को भोजन कराया। सब तृप्त हो गए। फिर उनने गुरु को एक चवन्नी भेजी और कहा—इससे सारे संसार को भोजन करा दीजिए। उनने चवन्नी का घी, गुग्गुल मँगाया और उस सामग्री से हवन कराया।

उस यज्ञ से निस्सृत सुगंधित प्राणवायु वृक्ष, वनस्पतियों, पशु-पक्षियों-मनुष्यों में संचरित हो गई। श्वास सभी लेते हैं। श्वास मार्ग में प्रविष्ट होकर वह यज्ञीय ऊर्जा सभी के रोम-रोम में समाहित हो गई। यह तो था कबीर का यज्ञ।

महायज्ञों की परंपरा को जिस जीवंत महापुरुष ने आगे बढ़ाया, हर व्यक्ति को प्रेरणा दी, उसके मूल में गुरुदेव की प्रेरणा रही है। मेरे सामने जो समुदाय, देव परिवार बैठा हुआ है, इनमें ब्राह्मणत्व पैदा किया जाए, यही सोचा पूज्यवर ने।

गुरुदेव सच्चे ब्राह्मण थे—वर्ण से ही नहीं, कर्म से भी। उन्होंने कहा—ब्राह्मण समाज सेवा के लिए आगे आएँ। ब्राह्मणों की पौध समाप्त हो गई। ब्राह्मण वर्ग विशेष नहीं, वरन एक चिंतन चेतना है।

राष्ट्र का निर्माण धर्म से

हम भी एक माँ के रूप में आपके अंदर दरद पैदा करना चाहते हैं। राष्ट्र को धर्म ही बना सकता है (यदि वह कायरों का नहीं हो तो) पंथ नहीं। यज्ञ में आहुति डालने का अर्थ है—कर्मों की सुगंधि फैलाना। भगवान राम ने 100 अश्वमेध यज्ञ किए थे। बाहु ने 60 और पृथु ने 100 अश्वमेध किए थे। उसी शृंखला में इन वाजपेय यज्ञों—ज्ञान यज्ञों को, आश्वमेधिक प्रयोगों को सम्मिलित किया गया है।

भावना से व्यक्ति बदला जा सकता है, अनुशासन से नहीं। एक बार श्री चेन्ना रेड्डी से गुरुदेव ने कहा था कि आप शासन कर सकते हैं, पर धर्मतंत्र भावना दे सकता है। शासन तंत्र आरोपित करता है, पर भावना नहीं दे सकता। शासन यदि पैसा ले लेगा, तो बैलगाड़ी से जाकर हम जन-जन को जगाएँगे।

शांतिकुंज कार्यकर्त्ताओं की टकसाल है। कार्यकर्त्ता गुरुजी-माताजी के लाल हैं। सबकी एक ही जाति, एक ही धर्म—गायत्री परिवार। जो गायत्री मंत्र कान तक—एक सीमित वर्ग तक सीमित था, आज छह करोड़ * से अधिक व्यक्ति गायत्री परिवार के 'फॉलोवर' हैं।

एक माँ की सब संतान

आप सब एक ही माँ के बच्चे हैं—माँ के दूध की लाज रखना। भावनाओं का पोषण, सिद्धांतों का पोषण जरूर हमने दिया है, उसकी लाज रखना। स्वामी दयानंद ने पाखंड खंडिनी पताका फहराई थी। आप भी जाना और जन-जन तक गुरुदेव के विचार फैलाना।

सन् 1958 में संपन्न हुए मथुरा के सहस्रकुंडीय यज्ञ को जिनने देखा है और उसमें भाग लिया है, उसकी प्रामाणिकता को असंदिग्ध मानते हैं। संपूर्ण यज्ञ जड़ी-बूटियों से निर्मित हवन सामग्री से संपन्न हुआ था। उसमें श्री अनंतशयनम् एवं गोविंद वल्लभ पंत जी जैसे प्रामाणिक व्यक्तियों ने भाग लिया और यज्ञ किया था।

ऋषि बनाने का मंत्र

गायत्री मंत्र का ही प्रतिफल था कि विश्वामित्र वसिष्ठ ऋषि बने। महर्षि वसिष्ठ के पास कामधेनु, नंदिनी गाय थी। सावित्री-सविता और गायत्री के ज्ञाता थे वे। विश्वामित्र ने उनसे पराजित होने के पश्चात कहा था—"**धिक् बलम्-क्षत्रिय बलम्, ब्रह्मतेजो बलम्-बलम्।**" शक्ति के प्रयोग से नहीं, भावना से भगवान को पाया-जगाया जा सकता है।

नागपुर का अभी यह ग्यारहवाँ अश्वमेध यज्ञ है। अभी हमें एक सौ आठ अश्वमेध करने हैं। ऐसे-ऐसे विशाल। हम सारे राष्ट्र को भाईचारे के एक सूत्र में पिरोना चाहते हैं। मजहब के नाम पर आज जो बिखराव दिखाई देता है, उसे एकता के सूत्र में बाँधना चाहते हैं। कोई भी धर्म बँटवारा नहीं सिखाता। मानवता की सेवा ही धर्म है।

हमने भी कहा है—'एक बनेंगे, नेक बनेंगे' हम राजनीति से परे हैं। न हम किसी मजहब से और न राजनीति से जुड़े हैं। ठोस व्यक्तित्व उभरकर आए, उसी के लिए गायत्री परिवार का गठन हुआ है, पद लिप्सा की आकांक्षा से नहीं। प्रयत्न करने पर आप भी विवेकानंद और निवेदिता बन सकते हैं।

नारी जागरण का कार्य पूज्य गुरुदेव ने किया है। परदा प्रथा, घूँघट को मिटाया है। माया वर्मा और जयपुर के पास विजौली की रानी के उदाहरण सामने हैं, जिन्होंने घूँघट के पट खोल कर मर्दों की तरह काम करना शुरू किया। सबला बनीं और वह सब करके दिखा दिया, जिसे कभी पुरुषों का अधिकार समझा जाता था।

यज्ञ से देवत्व का जागरण

यज्ञ की प्रतिक्रिया देवत्व के जागरण के रूप में होती है। जिनके अंदर देवत्व नहीं है, वे भी प्रेरणा लें। हर वर्ग, जाति के नगरवासी, सभी इसमें भाग लें और धोती पहनकर आ जाएँ। यह यज्ञ कल-कारखानों के प्रदूषण से लेकर मानसिक प्रदूषण तक को ठीक करने के लिए है। अकेले दिल्ली में 90 लाख में से 20 लाख व्यक्ति टी.बी. के मरीज हैं। यज्ञ से वातावरण संशोधन से लेकर स्वास्थ्य संरक्षण तक की प्रक्रिया शास्त्रसंगत, विधिसम्मत है।

कर्मकांडों—विधि-विधानों का अपना महत्त्व है, परंतु यज्ञ उसे जीवंत बनाता है। कर्त्ता का चरित्र एवं व्यक्तित्व इसमें महत्त्व रखता है। दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ वसिष्ठ ने नहीं, शृंगी ऋषि ने संपन्न कराया था। विधि-विधानों के साथ व्यक्तित्व की श्रेष्ठता नितांत आवश्यक है। ऐसे ही व्यक्ति तप:पूत कहलाते हैं और उनके द्वारा संपन्न किए गए कृत्य विशिष्ट फल प्रदान करते हैं। शेष तो कुमार्ग पर ले जाने का ही प्रयत्न करते हैं और स्वयं कुमार्गगामी बनते हैं।

* ये आँकड़े तत्कालीन हैं (1993) आज ये आँकड़े 15 से 20 करोड़ हैं।

यहाँ भी वे ही यज्ञ संपन्न कराएँगे, जो अपने जीवन में चरित्रनिष्ठा को उतार चुके हैं। शृंगी ऋषि ने उस यज्ञ में चरु के—खीर के तीन भाग किए थे, जिससे तीनों रानियों से राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न पैदा हुए थे।

समाज के परिवर्तन का आधार

इस उपराजधानी में एक से बढ़कर एक व्यक्तित्व भरे पड़े हैं। सारे महाराष्ट्र में हमारे जो मुट्ठी भर कार्यकर्त्ता हैं, जिन्हें अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करनी है और अपने अनुकरणीय व्यक्तित्व के माध्यम से जन-जन को अपना बनाना है। राजनीति नहीं करनी है। समाज तंत्र का परिवर्तन राजगद्दी पर बैठकर नहीं, वरन जमीन पर जाकर सेवा के माध्यम से किया जाता है।

हम अपने परिजनों से कहेंगे कि राजनीति से दूर रहना। जो खड़ा होगा, वह सौ प्रतिशत जीत जाएगा, पर इससे तो अच्छा आप हमारा काम कीजिए, मिशन का काम कीजिए, भगवान का काम कीजिए, हम आपको अपनी छाती से लगाकर रखेंगे। अश्वमेध हमें प्यार से गले लगाना सिखाता है।

नारी ही कल की कर्णधार है। यह यज्ञ नारी शक्ति को, जो समाज की धुरी है, उसकी शक्ति को उभारने के लिए हो रहे हैं। उसे हम जगाएँगे! नारी ने जो त्याग किए हैं, उसके बारे में कुछ तो सोचो। समाज का, आबादी का आधा भाग नारी है। यदि वही दबी और पिछड़ी स्थिति में बनी रही तो एकांगी प्रगति कैसे संभव हो सकती है?

मैंने गुरुदेव को आश्वासन दिया था कि आपके बच्चों को छाती से लगाकर रखूँगी, प्राणों से भी बढ़कर प्यार करूँगी। इनको कोई बहका नहीं पाएगा। वे टिटिहरी के अंडे हैं, किसी ने छेड़ा तो वह शाप दे देगी, पूर्वकाल की तरह। पूर्वकाल में जब समुद्र टिटिहरी के अंडों को बहा ले गया था, तो अगस्त्य ऋषि सहयोगी बनकर आए थे और समुद्र के पानी को चुल्लू में भरकर सोख लिया था। सिद्धांत वही है। मेरे अंडों को कुछ भी न होगा।

मैं भगवान नहीं, माँ हूँ

मैं भगवान नहीं, सच्ची माँ हूँ। भाग्य के विधाता तो हम नहीं, पर हम आपको परिस्थितियों से लड़ने के लिए मजबूत बना देंगे। आप हिम्मत न हारें, ऐसा बना दिया जाएगा। भगवान पर विश्वास रखिए। जितना मैंने गुरुजी के जीवन से सीखा है, अपने जीवन में उतारा है--कारण पहला नंबर मेरा है, मैं उनके साथ रही हूँ। काकभुशुंडि ने भगवान राम के अंदर सारा ब्रह्मांड देख लिया। शक्तियों को बारीकी से पढ़ा और पाया कि इस व्यक्ति के कण-कण में भगवान व शक्ति समाहित है। सभी उसके अधिकारी हैं—आप अपने अंदर से भावना, सेवा, यज्ञीय जीवन की वृत्ति पैदा करें तो पाएँगे कि इन दो दिनों में जनसमुदाय ऐसा उमड़ेगा कि देखते बनेगा। आप इस यज्ञ में सभी को बुलाइए, यज्ञ में बिठाइए और यज्ञ कराइए। यह सबका है।

॥ ॐ शांतिः ॥

एक व्यक्ति ने एक संत को यह कहते सुना कि समय बेशकीमती है और उसकी मनचाही कीमत भी प्राप्त की जा सकती है तो वह व्यक्ति आतुरता के साथ लोगों के पास जाकर कहने लगा—"मेरा समय बहुमूल्य है। सौ रुपये प्रतिदिन के हिसाब से आप ले सकते हैं।" लोगों ने पूछा—"जो समय हम खरीदेंगे, उससे तुम करोगे क्या?" व्यक्ति बोला—"मैं तो समय बेच रहा हूँ, उसका आप चाहे जो उपयोग कर लेना, मैं कोई मेहनत क्यों करूँगा?" लोगों में किसी ने उसे दुत्कार दिया, किसी ने पागल कहकर भगा दिया। वह व्यक्ति उन्हीं संत के पास पहुँचा और समय के बदले एक भी पैसा न मिलने की शिकायत की। इस नादानी पर संत हँसे और बोले—"बेटे! समय की कीमत जरूर मिलती है, पर वह तो कोरा चैक है। उस पर श्रम की कलम और विचार की स्याही से मूल्य भरा जाता है। श्रम और विचार मिलकर जितना मूल्य भर देते हैं, उतना अवश्य मिल जाता है।"

सकारात्मक संचार का संवाहक बन रहा देव संस्कृति विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने वर्तमान में पूरे विश्व में संस्कृति के विस्तार को लेकर अपनी एक अमिट छाप छोड़ी है। कुशल नेतृत्व में विश्वविद्यालय ने बहुत ही कम समय में देश-विदेश में अपनी पारंपरिक शिक्षा एवं सांस्कृतिक प्रभुता को लेकर ख्याति प्राप्त की एवं इस क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान भी स्थापित किया है।

यों तो विश्वभर में अनेक विश्वविद्यालय हैं, लेकिन देव संस्कृति विश्वविद्यालय अन्य विश्वविद्यालयों से भिन्न होकर शिक्षा के साथ-साथ देश के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले युवाओं को तैयार करने तथा विश्वभर में भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में अपना अमूल्य योगदान दे रहा है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी का यूरोप प्रवास इस दिशा में सार्थक सिद्ध हुआ। प्रतिकुलपति जी ने भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु यूरोप के कई देशों का भ्रमण कर विदेशियों में भारतीय संस्कृति के प्रति रुचि जाग्रत की। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति के यूरोप प्रवास में सर्वप्रथम लंदन शहर दिव्य संघ आश्रम, वर्जिनिया वाटर में गायत्री महायज्ञ का विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया।

इस पावन आयोजन के माध्यम से अखिल विश्व गायत्री परिवार के परिचय के साथ-साथ आध्यात्मिकता का संचार हुआ। हैरो, ग्रेटर लंदन एवं लिथुआनिया की राजधानी विल्नियस शहर में दीपयज्ञ संपन्न कराया गया। इस अवसर पर पवित्र वैदिक मंत्रों के शुद्ध उच्चारण व जय महाकाल के उद्घोष से सभी ऊर्जान्वित हो उठे। तत्पश्चात प्रतिकुलपति जी द्वारा आध्यात्मिक जिज्ञासु जनों की समस्या का समाधान भी किया गया।

यूरोप प्रवास के दौरान विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने विश्वविद्यालय की ओर से अनेकों महत्त्वपूर्ण अनुबंध स्थापित किए। इस दौरान उन्होंने युर्मला के मारस फाउंडेशन ऑफ लाट्विया कल्चर के साथ अनुबंध पर हस्ताक्षर किए।

यह अनुबंध संस्थान की निदेशक अग्निया सपरोवस्का जी की उपस्थिति में हुआ। इसके बाद प्रतिकुलपति महोदय ने बाल्टिक इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी, रीगा के साथ भी महत्त्वपूर्ण अनुबंध हस्ताक्षरित किया। इस दौरान बाल्टिक इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी के माननीय कुलाधिपति स्टानिस्लाव बुका उपस्थित रहे। साथ ही हॉलैंड के वृजिए विश्वविद्यालय और देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मध्य भी अनुबंध स्थापित किया गया।

इस अनुबंध पर जर्मनी व मिस्र के विश्वविद्यालयों के साथ-साथ लाट्विया विश्वविद्यालय, हॉलैंड विश्वविद्यालय, तूरिन विश्वविद्यालय व वृजे विश्वविद्यालय भी संयुक्त रूप से कार्य कर रहे हैं। प्रतिकुलपति जी को लाट्विया के दाउगवपिल्स शहर के पर्यटन फोरम में वक्ता के रूप में भी आमंत्रित किया गया।

इस दौरान उन्होंने भारत की तीर्थ परंपरा पर प्रकाश डालते हुए सभी को शांतिकुंज, हरिद्वार आने का आमंत्रण दिया। प्रतिकुलपति जी ने वहाँ मानवीय उत्कर्ष विषय पर विशेष उद्बोधन दिया। दाउगवपिल्स विश्वविद्यालय एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के शैक्षणिक अवसरों तथा भविष्य की रूपरेखा जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा की गई।

इस अवसर पर विश्वविद्यालय के इन्फॉर्मेशन सेंटर स्थित ग्रंथालय में चित्रकला तथा अन्य तरह की प्रदर्शनी का आयोजन किया गया, जिसमें प्रतिकुलपति जी ने ग्रंथालय को परमपूज्य गुरुदेव का साहित्य भेंट किया एवं वहाँ वाङ्मय की स्थापना का वचन दिया।

इसके उपरांत वे कॉनस शहर के लिथुआनियन इन्स्टीट्यूट ऑफ हेल्थ साइंसेस पहुँचे। यहाँ पर उन्होंने भारतीय संस्कृति की आधारभूत चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद, योग, प्रज्ञायोग व परमपूज्य गुरुदेव के दर्शन को अधिकारियों के समक्ष साझा किया। बैठक के दौरान दोनों संस्थाओं के विद्यार्थी, शोधार्थी एवं शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु निरंतर कार्यशालाएँ आयोजित करने का निर्णय लिया गया।

देव संस्कृति विस्तार क्रम में प्रतिकुलपति जी रोमानिया के क्लूज शहर पहुँचे। शहर के सबसे पुराने इंडिया सेंटर के भ्रमण दौरान वहाँ पहले से गुरुदेव का साहित्य उपलब्ध मिला। क्षण अत्यंत दिव्य व गौरवान्वित करने वाला रहा। उन्हों दीपयज्ञ का आयोजन कर लोगों तक परमपूज्य गुरुदेव और परमवंदनीया माताजी का संदेश पहुँचाया।

यूरोप प्रवास के दौरान प्रतिकुलपति जी कॉनस शहर स्थित वीतुदस मैग्नस विश्वविद्यालय व लिथुएनीयन स्पोर्ट्स यूनिवर्सिटी पहुँचे। वीतुदस मैग्नस विश्वविद्यालय में मानवीय उत्कर्ष पर उद्बोधन व दोनों संस्थाओं की भविष्य की रूपरेखा पर चर्चा हुई। वहीं लिथुएनीयन स्पोर्ट्स यूनिवर्सिटी पहुँचकर प्रतिकुलपति जी ने कुलाधिपति जी को पूज्य गुरुदेव का चिंतन, विश्वविद्यालय व बॉल्टिक केंद्र का परिचय दिया।

इस दौरान स्पोर्ट्स यूनिवर्सिटी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के साथ अनुबंध हेतु रुचि व्यक्त की। दोनों संस्थाएँ भविष्य में योग, मनोविज्ञान, प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्रों में शोध व पठन-पाठन पर कार्य करेंगी।

शांतिकुंज स्वर्ण जयंती वर्ष के पुनीत अवसर पर लेस्टर शहर, इंग्लैंड में भव्य आयोजन किया गया। दीप महायज्ञ के माध्यम से परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी का संदेश अनेक लोगों तक पहुँचाया गया। आयोजन की मुख्य अतिथि के रूप में माननीया गायत्री इस्सर कुमार जी (यूनाइटेड किंग्डम में भारत की राजदूत) ने गायत्री परिवार द्वारा किए जा रहे भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार की सराहना की।

शिक्षा के साथ-साथ नैतिक मूल्यों को लेकर भी विश्वविद्यालय प्रतिबद्ध है। उत्सव देव संस्कृति विश्वविद्यालय का वार्षिकोत्सव ही नहीं, महापर्व है। जो यहाँ के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के जीवन में हर वर्ष अमिट छाप छोड़ जाता है और सभी का हृदय उत्साह की तरंगों से भर देता है। उत्सव जीवन में सहजता, सरलता, मधुरता, उत्साह, उमंग, एवं उल्लास का संचार करता है।

यह तीन दिवसीय उत्सव कार्यक्रम विद्यार्थियों को अपने भीतर छिपी प्रतिभाओं को सभी के समक्ष लाने का एक मंच प्रदान करता है। कार्यक्रम के प्रथम दिन प्रतिकुलपति जी द्वारा आर० एंड डी० ग्राउंड में मशाल जलाकर तीन दिवसीय उत्सव का उद्घोष किया गया। विद्यार्थियों के उत्साहवर्द्धन हेतु दे०सं०वि०वि० के कुलाधिपति श्रद्धेय ने विद्यार्थियों को मार्गदर्शन एवं आशीर्वचन दिए। उत्सव की शृंखला में द्वितीय दिवस पूर्ण उत्साह के साथ विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों और खेलों का आयोजन किया गया। जहाँ विद्यार्थियों ने अपनी प्रतिभाओं का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया।

उत्सव के अंतिम दिन सभी सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं में शीर्ष स्थान प्राप्त करने वाले प्रतिभागियों द्वारा मृत्युंजय सभागार में प्रस्तुतियाँ दी गईं। प्रतिकुलपति जी ने विद्यार्थियों के प्रयास की सराहना करते हुए कहा कि सभी विद्यार्थियों ने अपनी अलौकिक प्रस्तुति से अत्यंत अद्भुत संदेश पेश किया है। लोगों के भीतर योग एवं अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के लिए अधिक-से-अधिक जाग्रति लाने के लिए देश के विभिन्न हिस्सों में अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के पूर्व से ही योग के निरंतर कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं।

देवभूमि हरिद्वार के हर की पौड़ी में देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा योगोत्सव का आयोजन किया गया। इस योगोत्सव का आयोजन मोरारजी देसाई नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ योगा एवं आयुष मंत्रालय, भारत सरकार के संयुक्त तत्त्वावधान में हुआ। प्रातःकाल में इस योग उत्सव का शुभारंभ ओम् उच्चारण एवं गायत्री मंत्र से किया गया। विद्यार्थियों द्वारा योग के माध्यम से नशामुक्ति और तंबाकूमुक्त जीवन का शुभारंभ ओम् उच्चारण एवं गायत्री मंत्र से किया गया। विद्यार्थियों ने योग के माध्यम से नशामुक्ति और तंबाकूमुक्त भारत का संकल्प लिया। ❑

एक जिज्ञासु ने पूछा—"सबसे महत्त्वपूर्ण काम कौन-सा है? सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति कौन है और सबसे अच्छा समय कब होता है?" ज्ञानी ने समाधान करते हुए जवाब दिया—"जो काम हाथ में है, वही सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार जो साथ काम करता है, वही सबसे उपयुक्त है और वर्तमान समय ही सबसे अच्छा समय है और इसे गँवाओ मत।"

अपनों से अपनी बात

सनातन धर्म की गौरव-गरिमा की पुनर्प्रतिष्ठा करेंगी नारियाँ

वर्तमान परिस्थितियों की विषाक्तता से सभी भली भाँति परिचित हैं। सामाजिक विषमता की जो परिस्थितियाँ हैं—उनसे सभी की भिज्ञता है, परंतु जो सबसे बड़ा दुर्भाग्य विगत दिनों की परिस्थितियों के कारण उभरकर आया है, वह सामाजिक गतिरोध का कम और आंतरिक एवं आत्मिक विपन्नता का ज्यादा है। इससे बढ़कर के दूसरा दुर्भाग्य भला क्या होगा कि वर्तमान समय में मानवीय जीवन, जिसे अध्यात्मवेत्ता से लेकर वैज्ञानिक इस सृष्टि के परम सौभाग्यों में से एक गिनते हैं, ईश्वरप्रदत्त उपहारों में से एक गिनते हैं—उस मानवीय जीवन के अंदर निहित दैवी संभावनाओं की, ईश्वरीय संभावनाओं की जितनी उपेक्षा हुई है, उतनी शायद ही पहले कभी हुई हो। यह संभवतया वर्तमान परिस्थितियों के घात दंश में से एक है कि मानवता का, मानवीय संवेदनाओं का जितना पतन और अवमूल्यन विगत दिनों में हुआ है—उतना शायद ही पहले कभी हुआ हो।

अखबारों में छपने वाले समाचार, पढ़ने-सुनने-दिखने में आने वाली घटनाएँ कई बार मन में इन प्रश्नों को जन्म देती हैं कि कहीं मानवता धरती से पूरी तरह से विदा ही तो नहीं हो गई? जब हम इनसानों के शरीर में लोगों को भेड़ियों की तरह से आचरण करते देखते हैं तो एक जाहिर-सा प्रश्न उभरता है कि आखिर हम किस तरह का संसार आने वाली पीढ़ी को उपहार में देकर जा रहे हैं? व्यक्ति अंदर से अशांत हैं, परिवार अपने अस्तित्व को तलाशते नजर आते हैं, सामाजिक विग्रह हर रोज उभरते दिखाई पड़ते हैं।

बाहर से लेकर मनुष्य के विचारों में पसर चुका प्रदूषण--एक ऐसा घुटन भरा माहौल पैदा कर रहे हैं, जहाँ पर यदि समय रहते सही व सम्यक कदम न उठाए गए तो यह धरती रहने योग्य भी शायद ही रह जाए। मनुष्य अंदर से खोखला है, भावनाओं की दृष्टि से शून्य बैठा है, चिंतन की दृष्टि से कंगाल बैठा है और चूँकि हर व्यक्ति, ऐसा प्रतीत होता है कि स्वार्थपूर्ति को जीवन का प्रमुख उद्देश्य समझकर बैठा है, इसलिए स्वाभाविक है कि पारस्परिक सहयोग की भावना अब पलायन करके बैठी है। आदमी को अपनों की सद्भावना पर तनिक-सा भी भरोसा अब नहीं है।

ध्यान से देखें तो ये विषवृक्ष के पत्ते हैं—इनकी जड़ें मनुष्य के चिंतन में आई संकीर्णता में हैं। आज की समस्याओं का एक मूल कारण मनुष्य की भावनात्मक संकुचितता है। ये परिस्थितियाँ हमारे संवेदनाशून्य हो जाने से उपजी हैं और इनका समाधान भी तब ही संभव है, जब मनुष्य के भीतर के संवेदना के तारों को पुनः झंकृत किया जा सके। इतिहास के अनेकों घटनाक्रम इस बात की गवाही देते हैं कि यदि मनुष्य के दिल के जख्मों को भर दिया जाए तो उसे शैतान से संत बनते देर नहीं लगती।

यदि इनसान के भावों का परिवर्तन हो जाए तो एक तरह से उसका नवनिर्माण हो जाता है। व्यक्ति वही रहता है, शरीर व आकृति तो पूर्ववत् ही रहते हैं मात्र उसकी चेतना और प्रकृति का रूपांतरण हो जाता है। इनसान की भावनाओं को पोषित करने की सामर्थ्य, उनकी संस्कृति, संवेदना एवं संस्कार से परिपुष्ट करने की ताकत भारत को नारियों में सदा से ही रही है।

भारत में गार्गी, घोषा, अपाला एवं लोपामुद्रा से लेकर सावित्री, अनसूया, शांडिली जैसी महान नारियों ने एवं रानी लक्ष्मीबाई, रानी हाड़ा, रानी होलकर जैसी वीरांगनाओं ने अनेकों बार भारतीय चिंतन को एक नई सोच प्रदान की है और वर्तमान समय भी कुछ ऐसी ही माँग भारत की महान नारियों से करता नजर आता है।

जब हम ऐसे उदाहरणों की बात करते हैं तो दृष्टि स्वतः ही माता सीता की ओर चली जाती है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम की अर्द्धांगिनी माता सीता के दृढ़ निश्चय और संकल्पनिष्ठ जीवन से भला कौन अपरिचित है? कैकेयी ने भगवान राम के लिए वनवास माँगा था, परंतु सबके समझाने और विरोध कर देने के बाद भी माँ सीता ने भगवान राम के साथ वनवास पर जाना स्वीकार किया, यहाँ तक कि जब दशानन रावण, माँ सीता का अपहरण करके उन्हें

छलपूर्वक लंका ले गया और वहाँ उसने भाँति-भाँति के लोभ दिखाकर उनको लंका की साम्राज्ञी बनने का लालच दिया तो वे बोलीं—

शक्या लोभयितुं नाहम् ऐश्वर्येण धनेन वा।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा॥
उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम्।
कथं नाम उपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित्॥
विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि॥

अर्थात मुझे तुम ऐश्वर्य या धन के लोभ से अर्जित नहीं कर सकते। मैं भगवान राम से उसी तरह अलग नहीं हो सकती, जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य से अलग नहीं होती। लोक के स्वामी श्रीराम की पूजा का सहारा लेने के बाद किसी और के सहारे की मुझे जरूरत नहीं। सबको विदित है कि भगवान राम धर्मों के ज्ञाता हैं और शरणागतवत्सल हैं। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो मुझे वापस लौटाकर उनकी मैत्री का वर माँगो। (वाल्मीकि रामायण)

हमारी संस्कृति का आधारस्तंभ ऐसी ही नारियाँ हैं। ध्यान से देखें तो आज पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति के पुनीत-पावन प्रवाह को अक्षुण्ण बनाए रखने में भारतीय देवियों का ही हाथ रहा है। भारत के गौरव को समूचे भूमंडल में सुरक्षित रखने का कार्य भी उन्होंने ही किया है। माँ सीता की तरह ही सती सावित्री का उदाहरण भला कौन भूल सकता है? जब देवर्षि नारद ने सत्यवान का चयन करते समय उनको चेताया कि हे देवि! सत्यवान की आयु मात्र एक वर्ष है। वैधव्य को प्राप्त करने से अच्छा है कि किसी और व्यक्ति का चयन करो तो ऐसे में सावित्री बोलीं—"देवर्षि! हृदय एक ही बार अर्पित किया जाता है, बार-बार नहीं।" सती सावित्री के उसी दृढ़ संकल्प का परिणाम था कि जब यम, सत्यवान को लेने आए तो सावित्री भी उनके पीछे चलने लगीं। उनको ऐसा करते देख यम ने उनको लौटने को कहा तो वे बोलीं—

यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति।
मया च तत्र गन्तव्यम् ऐष धर्मः सनातनः॥

अर्थात जहाँ मेरे पति जा रहे हैं या कोई दूसरा उन्हें ले जा रहा है—वहीं मैं भी जाऊँगी, यही सनातन धर्म है। सर्वविदित है कि अंततः सत्यवान का जीवन लौटाने के लिए यमराज को विवश होना पड़ा। ऐसी महान नारियों के कारण ही भारतीय संस्कृति की आभा समस्त विश्व के नभमंडल पर सदा अंकित रही है। आवश्यकता आज यही प्रतीत होती है कि हम भारतीय नारीत्व के उसी गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करें, ताकि सनातन धर्म की लुप्त हो चुकी गरिमा को सुरक्षित रखा जा सके। ❑

संत भीखण प्रवचन दे रहे थे। सामने बैठे श्रोताओं में आसोजी नामक श्रोता ऊँघ रहे थे। संत भीखण उसे चेताते हुए बोले—"आसोजी! सोते हो या जागते हो?" प्रश्न सुनते ही आसोजी की आँखें खुलीं और वे बोले—"महाराज! जगा हूँ।" ऐसा कहकर आसोजी फिर सो गए। थोड़ा समय निकल जाने पर संत भीखण ने पुनः आसोजी से वही प्रश्न किया।

आसोजी फिर सकपकाकर उठे और बोले—"महाराज! जगा हूँ।" यह बोलकर आसोजी पुनः सो गए। थोड़ा समय बीत जाने पर संत भीखण उनसे बोले—"आसोजी! जिंदा हो या मर गए?" आसोजी उठे और बोले—"महाराज! जगा हूँ।" मनुष्य भी ऐसे ही अचेतन में जीवन गुजार देता है और अपनी प्रवृत्तियों के अनुरूप कर्म करता रहता है। इसीलिए पतंजलि ऐसे सोते हुओं को जगाते हुए बोलते हैं कि जब तक चित्त की वृत्तियाँ शांत नहीं होतीं, *मनुष्य जागते हुए भी सोता रहता है और जो सोकर भी जाग जाता है, वही सच्चा योगी है।*

जग कल्याणी मातु भगवती

आशुतोष गुरुदेव प्रभु की, जगदंबिके भवानी हो।
मातु भगवती वंदनीय, तुम जो जग की कल्याणी हो॥

आदिकाल से गुरुवर के संग डोरी बँधी तुम्हारी है,
एक नहीं सौ बार आपने शर्तें सब स्वीकारी हैं,
अटल आस्था प्रभुवर के प्रति रही सदा ही न्यारी है,
प्रथम शिष्य बनकर तुमने दे दी इच्छाएँ सारी हैं,
शक्तिस्वरूपा जगदंबे माँ, तुम तो अकथ कहानी हो।
मातु भगवती वंदनीय, तुम तो जग की कल्याणी हो॥

गुरु का महाप्रयाण हुआ स्तब्ध रह गया जग सारा,
शिष्य हो गए विचलित सारे ओझल हुआ आँख तारा,
तुम पर टूटी थी विपत्ति दिखलाया था साहस न्यारा,
निज पीड़ा को भूल आपने बच्चों के भय को टारा,
कोटि-कोटि शिष्यों हित माता बनीं हुई वरदानी हो।
मातु भगवती वंदनीय, तुम जो जग की कल्याणी हो॥

प्यार और ममता से जीवन भर सबका उपकार किया,
शरण आपकी जो आया, तुमने अनुदान अपार दिया,
शिष्यों की करनी का तुमने माता कहाँ विचार किया,
जन्मों के पापों को धोकर जीवन में ही तार दिया,
ऐसा शिष्य नहीं जग जिसने महिमा तेरी न जानी हो।
मातु भगवती वंदनीय, तुम तो जग की कल्याणी हो॥

संग कबीर के लोई का तू नाम धराकर आई है,
परमहंस के साथ शारदामणि की शोभा पाई है,
ऋषि वसिष्ठ की अरुंधती तुम शिव की सती कहाई हैं,
श्रीराम-भगवती रूप जग में करुणा बरसाई हैं,
युगों-युगों से मातु अंबिके, तुम जानी पहचानी हो।
मातु भगवती वंदनीय, तुम तो जग की कल्याणी हो॥

—शोभाराम शशांक

'महिला सशक्तीकरण वर्ष 2022-23' संबंधी मार्गदर्शन हेतु 5 दिवसीय महिला टोली प्रशिक्षण सत्र युगतीर्थ शांतिकुंज-हरिद्वार में संपन्न

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-08-2022
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

अंतरराष्ट्रीय योग दिवस–2022 में युगतीर्थ शांतिकुंज के
अंतःवासी परिजन-शिविरार्थियों की उल्लासपूर्ण सहभागिता

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रित–मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565–2403940, 2402574, 2412272, 2412273 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल–akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org